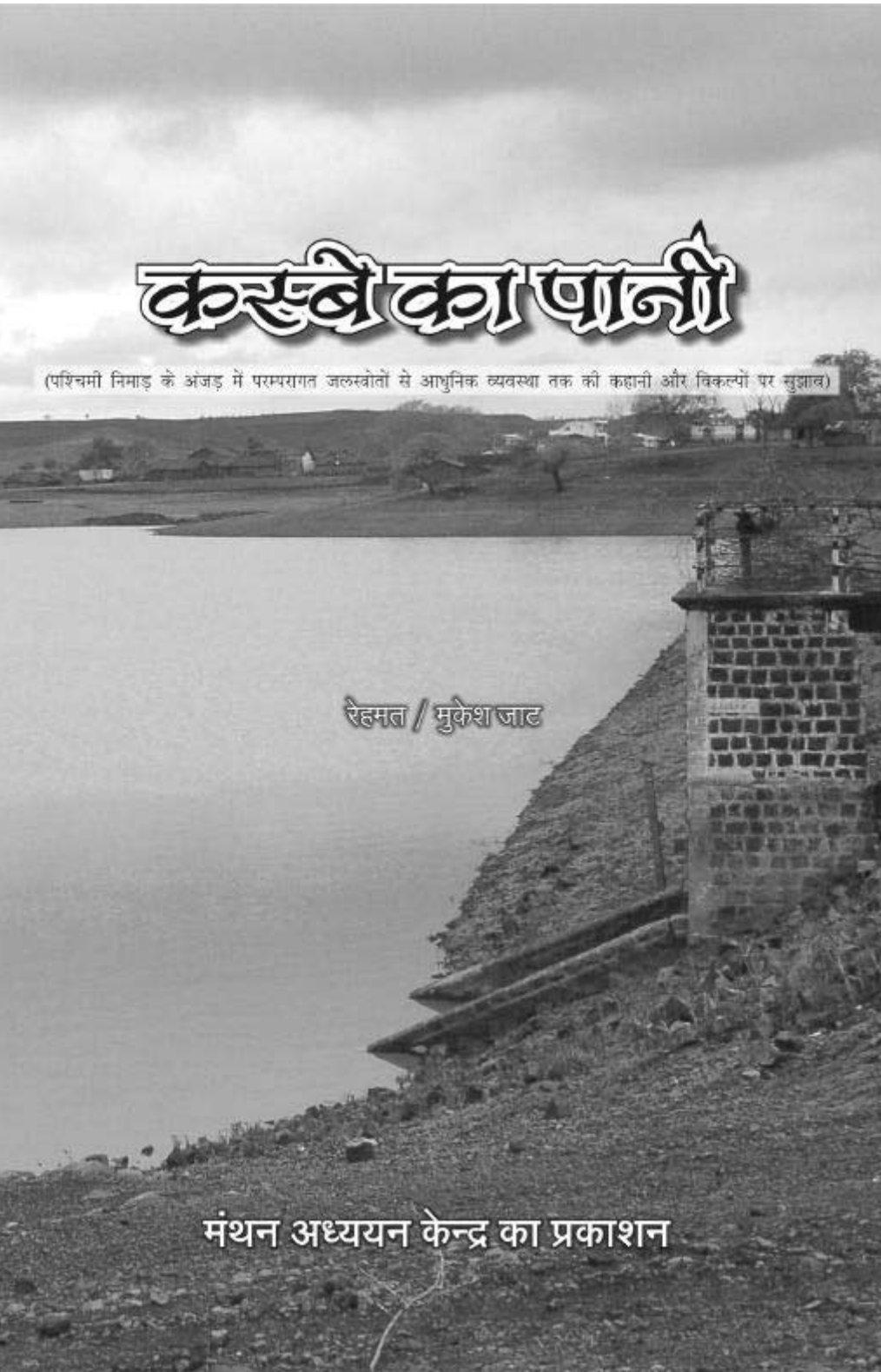

कस्बे का पानी

(पश्चिमी निमाड़ के अंजड़ में परम्परागत जलस्त्रोतों से आधुनिक व्यवस्था तक की कहानी और विकल्पों पर सुझाव)

रेहमत / मुकेश जाट

मंथन अध्ययन केन्द्र का प्रकाशन

टाकीज की बावड़ी

अपना वैभव खो चुकी यह बावड़ी अब नर्मदा योजना की जल भंडारण टंकी मात्र है।

भोंगली नदी

एक समय की बारहमासी नदी अब गंदे नाले में तब्दील हो चुकी है।

वृक्षारोपण

नगर पंचायत द्वारा दशहरा मैदान की पहाड़ी पर वृक्षारोपण का प्रयास।

कस्बे का पानी

Kasbe Ka Pani (Hindi)

प्रकाशक

मंथन अध्ययन केंद्र,
दशहरा मैदान रोड़,
बड़वानी (म॰ प्र॰) 451551
फोन - 07290 - 222857
manthan_b@ sancharnet.in
manthan.kendra@gmail.com

प्रथम संस्करण - जुलाई, 2003
द्वितीय संस्करण - अक्टूबर, 2004

प्रतियां - 500
आवरण चित्र - रणजीत सागर
छाया - शिरीष शार्दूल

सहयोग राशि - 20 रूपये मात्र

इस पुस्तिका पर कोई कॉपीराईट नहीं है। इसकी सामग्री का उपयोग किया जा सकता है, लेकिन स्रोत का उल्लेख करने पर प्रसन्नता होगी।

मंथन अध्ययन केंद्र

''मंथन अध्ययन केन्द्र'' ऊर्जा, बिजली तथा पानी से जुड़े मुद्दों का अध्ययन, विश्लेषण तथा इन क्षेत्रों की गतिविधियों का सतत् आंकलन करता है। वैश्वीकरण और निजीकरण के चलते इन क्षेत्रों में हो रहे बदलावों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। हमारा अध्ययन मुख्यतः पानी और उर्जा के सवालों पर केन्द्रित होकर समता, न्याय और स्थाई विकास के संदर्भ में है।

'मंथन' में वैश्वीकरण-निजीकरण की प्रक्रिया, सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की बदलती भूमिका, बदलते कानूनी ढाँचों से बदले परिवेश में पानी, ऊर्जा, बड़े बाँध, निजीकरण तथा इन क्षेत्रों के विकल्पों पर अध्ययन जारी है। हमारे यहाँ इन मुद्दों से संबंधित दस्तावेज, पुस्तकें, अखबारों की कतरनें, पत्रिकाएँ आदि भी विषयवार वर्गीकृत करके रखी गई हैं। फिलहाल दो मुद्दों पर विशेष अध्ययन जारी है - पहला, पानी के क्षेत्र में निजीकरण और दूसरा, भाखड़ा-नंगल परियोजना की वास्तविक लाभ-हानि।

'मंथन' विभिन्न संघर्षों, जन आंदोलनों, सामाजिक संस्थाओं, अध्ययन केन्द्रों आदि के साथ निकट और जीवंत संपर्क बनाएं हुए है।

'मंथन अध्ययन केन्द्र', मंथन रिसर्च एण्ड सोश्यल डिवेलपमेंट सोसायटी, 23/12, एम॰जी॰ रोड़, बड़वानी (रजि. नं॰ - आईएनडी/5753/2001) के अंतर्गत कार्यरत है।

प्राक्कथन

भारत में लगभग 4,000 नगरीय इकाईयाँ हैं। इनमें से करीब 60 प्रतिशत नगर 20,000 से कम आबादी वाले हैं। अंजड़ जैसे इन 2,400 से अधिक कस्बों का देश के विकास मानचित्र पर कोई अस्तित्व नहीं है। यह उपेक्षा देश में व्याप्त क्षेत्रीय असमानता की दर्दनाक कहानी का एक हिस्सा है। वैश्वीकरण के दौर में यह उपेक्षा और गहराती ही नज़र आती है। जब अंजड़ जैसे कस्बे भारत के आदिवासी बहुल इलाकों में स्थित होते हैं, तब उनकी परिस्थितियां और भी गंभीर हो जाती हैं।

जहां एक ओर ये बस्तियाँ क्षेत्रीय असमानता के बोझ में दबी हुई हैं, वहीं दूसरी ओर इनमें रहने वाले गरीब, दलित व पिछड़े तबके निजीकरण और उपभोक्तावाद की चमक-दमक से दूर, बेहाल परिस्थितियों में, अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करते हुए निराशापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। पानी जैसी रोज़मर्रा की ज़रूरत को किसी तरह पूरा करने की होड़ में इन वर्गो के आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास को ठेस पहुंचती है। कुंठा, आक्रोश, सामाजिक तनाव और कुलबुलाती हिंसा से एक विस्फोटक स्थिति भी निर्मित हो सकती है। दूसरी ओर यदि ऐसे कस्बों हेतु सकारात्मक सोच के साथ इन समस्याओं से निपटने के लिए पहले से ही कारगर योजना बना ली जाए तो भारत के महानगरों में आज पनपने वाली भीषण समस्याओं से बचा जा सकता है।

अंजड़ के संदर्भ में 'मंथन अध्ययन केन्द्र' के इस सराहनीय प्रयास को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना उचित होगा। इस अध्ययन में पानी के मामले में स्वावलंबी व परिपूर्ण कस्बे में किन कारणों से जल समस्या उत्पन्न हुई, इस इतिहास का गहराई से विश्लेषण किया गया है। साथ ही समस्या के समाधान के संभावित मार्ग का संकेत भी मिलता है। तकनीकी दृष्टि से आगे की कार्य योजना में जल उपयोग पर नियंत्रण, जल वितरण तथा जल पुनर्उपयोग के पहलुओं को समाहित करना आवश्यक होगा। केवल जल संग्रहण में इज़ाफे से तब तक कुछ भी हासिल नहीं होने वाला जब तक कि इस सामूहिक संसाधन के उपयोग पर सामूहिक नियंत्रण सुनिश्चित नहीं होता।

कार्य योजना का ठोस सामाजिक आधार भी तैयार करना होगा ताकि गरीबों, महिलाओं, दलितों व आदिवासियों के अधिकार सुरक्षित किए जा सकें। मुझे विश्वास है कि 'मंथन' की टीम सामुदायिक संगठन व सशक्तिकरण के इस भगीरथी कार्य की दिशा में पूर्ण ऊर्जा से पहल करेगी।

24 जुलाई 2003

– डॉ० मिहिर शाह
सचिव, समाज प्रगति सहयोग,
बागली, जिला देवास (म०प्र०)

इस प्रयास के बारे मे...

अंजड़ – हमारे विशाल देश के सबसे बड़े राज्यों में से एक, मध्यप्रदेश के सुदूर कोने में बसा हजारों अन्य कस्बों जैसा एक कस्बा। इस कस्बे की पानी की व्यवस्था में अंजड़वासियों को छोड़कर किसकी रूचि होगी? ऐसी क्या विशेषता है इस कस्बे में, जिसके चलते हमने इसे अध्ययन हेतु चुना? असल में अंजड़ सैकड़ों–हजारों अन्य कस्बों जैसा ही है और यही उसकी विशेषता है। अंजड़ में पीने व निस्तार के पानी की व्यवस्था, स्थिति, समस्या और उनका निराकरण कमोबेश देश के हजारों अन्य कस्बों जैसा ही है। अंजड़ की पानी की व्यवस्था का यह अध्ययन इसीलिए अन्य जगहों को समझने में मददगार हो सकेगा।

आज देश में पानी की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। विडम्बना यह है कि पानी के विपुल स्रोतों के बावजूद देश में पेयजल तथा घरेलू उपयोग के पानी की गंभीर समस्या खड़ी हुई है। पीने और घरेलू उपयोग हेतु जितना पानी आवश्यक है वह कुल उपलब्ध पानी का बहुत ही छोटा हिस्सा है। हमारे देश में इस्तेमाल हो रहे पानी का मात्र 2 प्रतिशत पीने तथा निस्तार के काम में आता है। शेष 95 प्रतिशत सिंचाई और 2.5 प्रतिशत उद्योगों में लगता है।

इतने कम पानी की जरूरत और राष्ट्रीय जलनीति की प्राथमिकताओं में पहला स्थान होते हुए भी पीने के पानी जैसी बुनियादी आवश्यकता पूरी न हो पाना हमारे लिए शर्म की बात है। और तो और, आजादी के बाद यह स्थिति बिगड़ती ही जा रही है। योजना आयोग के अनुसार आजादी के समय देश में 232 गाँव जलस्रोत विहीन थे। पेयजल पर प्रतिवर्ष हजारों करोड़ रूपये खर्च करने के बावजूद अब ऐसे गाँवों की संख्या बढ़कर 1,53,701 से अधिक हो गई है। पहली पंचवर्षीय योजना में पेयजल व्यवस्था पर 49 करोड़ रूपये खर्च किये गये थे जो आठवीं पंचवर्षीय योजना तक बढ़कर 17,711 करोड़ हो गए। यानी कि पानी पर बेतहाशा खर्च करने के साथ ही जलस्रोत विहीन गाँवों की संख्या भी बढ़ रही है। इसके साथ ही प्रदूषण, विशेषकर रासायनिक प्रदूषण के कारण पानी की गुणवत्ता में भी भारी गिरावट आई है।

आखिर क्यों खड़ी हुई है, यह समस्या? भारत की जमीन पर हिमवर्षा सहित 4000 घन किलोमीटर पानी बरसता है। 200 घन किलोमीटर पानी पड़ौसी देशों की जमीन से आता है। इसमें में 1122 घन किलोमीटर पानी ही भूजल अथवा सतही जल के रूप में उपयोग लायक होता है। इस पानी का अधिकांश हिस्सा हमें बारिश के तीन महीनों में ही प्राप्त होता है। परंतु इसे रोकने तथा स्थानीय ताने–बाने के अभाव में हमें यह उपलब्ध नहीं हो पाता लेकिन ऐसी लापरवाही उपयोग के मामले में नहीं होती। प्रति व्यक्ति के हिसाब से बढ़ी माँग की आपूर्ति उपलब्ध जलभण्डारों से ही की जा रही है। हालांकि संरक्षण के अभाव में अब ये जलस्रोत भी जवाब दे रहे हैं। ये हालत शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में बराबर है। अलबत्ता बड़े–बड़े

शहरों की समस्याओं पर काफी ध्यान दिया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र की समस्याएँ भी आजकल 'वाटरशेड' कार्यक्रम के कारण चर्चा में हैं। पर छोटे शहरों या कस्बों की तरफ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

सन् 2000 में 1 लाख तक आबादी वाले कस्बों में रहने वालों की कुल जनसंख्या 9 करोड़ 70 लाख थी जिसके सन् 2050 में बढ़कर 50 करोड़ 4 लाख तक पहुँच जाने का अनुमान है। इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए पानी की आपूर्ति एक चुनौतीपूर्ण काम है परंतु इस पर शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। इसी तरह के एक कस्बे अंजड़ के पानी की व्यवस्था का अध्ययन करना इसलिए और भी जरूरी हो जाता है।

घनी बस्तियाँ और उनके लिए पानी की अधिक तथा केंद्रीकृत माँग शहरों और कस्बों का चरित्र है। दिल्ली, मुंबई और चैन्नई जैसे महानगरों की जलव्यवस्था बाहरी स्रोतों पर टिकी है। दिल्ली हिमालय के पानी पर और चैन्नई कृष्णा नदी के पानी पर निर्भर हैं। ये योजनाएँ आर्थिक दृष्टि से तो महँगी हैं ही, पर्यावरणीय दृष्टि से भी धारणीय (Sustainable) नहीं हैं। ऐसी योजनाओं में उन स्थानों का पानी आता है जिन पर दूसरे लोगों का भी अधिकार होता है और नतीजे में आपसी विवाद बढ़ते हैं। पेयजल आपूर्ति के मुद्दे पर दिल्ली और हरियाणा तथा सिंचाई के पानी हेतु तमिलनाडु और आंध्र के किसानों के मध्य विवाद राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहे हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट हुआ है कि आर्थिक अथवा राजनैतिक ताकत के बल पर बड़े शहर पानी प्राप्त कर लेते हैं। अपेक्षाकृत छोटे शहरों और कस्बों की आर्थिक राजनैतिक ताकत कम होती है, फिर भी वे हर संभव कोशिश करते हैं ताकि उन्हें बाहरी स्रोतों से पानी मिल सके।

पुरानी व्यवस्था क्यों बिगड़ी? पानी की समस्या की जड़ें कहाँ पर हैं? इन बातों पर पूरी तरह से गौर किये बिना ही बाहर के जलस्रोतों पर नजर दौड़ाई जाती है। बगैर इस बात का विचार किये कि उन जलस्रोतों पर बस्ती का कितना अधिकार है, और क्या उस बस्ती ने 'अपने' जलस्रोतों का पूरी तरह से संरक्षण, संवर्धन और उपयोग किया है? हमारे निकट स्थित शहर खरगौन का ही उदाहरण लें। पानी की कमी होने पर देजला–देवाड़ा परियोजना से पानी की माँग की जाती है और खरगौन की पेयजल जरूरत हेतु उन्हीं किसानों के पानी लेने पर पाबंदी लगा दी जाती है, जिनके नाम पर यह परियोजना बनाई गई थी। केवल इतना ही नहीं इस दौरान यदि कोई किसान पानी ले ले तो उसे चोर करार देकर उनके विद्युत पम्प जब्त कर लिये जाते हैं। पंजाब–हरियाणा को हराभरा करने वाली भाखड़ा परियोजना के लिए बलि देनेवाले भाखड़ा गाँव को यदि पाँच दशक बाद भी पीने का पानी नसीब न हो तो इसे न्यायपूर्ण कौन कहेगा? फिर, दूर के स्रोतों पर आधारित व्यवस्था कितनी भरोसे की है और कितनी महंगी पड़ेगी, यह भी महत्व के सवाल हैं।

अंजड़ के बेपानी होने की कहानी भी कमोबेश वही है जो देश के आम कस्बों की

है। अंजड़ को इस अध्ययन हेतु चुनने के पीछे देश की ऐसी सभी कस्बानुमा बस्तियों में आत्मनिर्भर जल व्यवस्था के विकल्प ढूँढने का उद्देश्य भी रहा है।

अंत में सिर्फ इतना ही कि अंजड़ की जलव्यवस्था पर केंद्रित यह रिपोर्ट देश की आम घनी बस्तियों की प्रतिनिधि रिपोर्ट है। अंजड़ के अनुभव से सामने आये विकल्प मोटे तौर पर अन्य स्थानों पर भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जरूरत सिर्फ जीवटता से प्रयास करने की है। इस रिपोर्ट के माध्यम से हमारा प्रयास है कि बरसात के महीनों में प्राकृतिक रूप से मिलने वाले जल को रोककर अपनी जरूरतें पूरी की जाएं। अन्यथा हम पानी को लेकर कहीं ऐसी हालत में न पहुँच जायें जहाँ से वापस लौटना भी असंभव हो।

श्री रेहमत और श्री मुकेश जाट पानी एवं समाज से जुड़े हुए अनेक विषयों पर लम्बे समय से कार्य करते रहे हैं। पानी सरीखे अत्यंत महत्वपूर्ण विषय पर लगभग 6 माह तक अंजड़ के लोगों के साथ मिलकर एवं गंभीर विश्लेषण के बाद उन्होंने यह रिपोर्ट तैयार की है।

इस रिपोर्ट को तैयार करने में हमें अनेक साथियों का रचनात्मक सहयोग मिला है। सर्वश्री राजेन्द्र सोलंकी (न॰पं॰ अध्यक्ष), कांतिलाल गुप्ता (मु॰न॰पं॰ अधिकारी), शालिग्राम मिस्त्री, मोतीलाल पाटीदार (काका), माणक वडनेरे, खेमाभाई पाटीदार, गोविन्द आवल्या, बंशीलाल उटवाल, सुरेश पाटीदार, शोभाराम पाटीदार, राजेन्द्र भावसार, सत्येन्द्रसिंह मण्डलोई, भूपेन्द्र पाटीदार, दिलीप आवल्या, जामसिंह भाई (सभी अंजड़), पत्रकार उमेश रेवलिया, रवीन्द्र जैन (बड़वानी) और नीलेश देसाई (संपर्क संस्था, रायपुरिया) से हमें महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ प्राप्त हुईहैं। सुश्री नंदिनी ओझा (बड़वानी), सचिन कुमार जैन (भोपाल) तथा आलोक अग्रवाल (वरिष्ठ कार्यकर्ता, NBA) से मिले सुझावों ने रिपोर्ट का वर्तमान स्वरूप बनाने में मदद की है। वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता एवं पत्रकार राकेश दीवान ने रिपोर्ट को पठनीय बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मैं इन सभी साथियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इसके अतिरिक्त जिन साथियों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग मिला उनके प्रति भी मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

यह रिपोर्ट अंजड़ में पानी की मौजूदा समस्या और उसके विकल्प की तरफ मात्र एक संकेत भर है। हमें अच्छा लगेगा यदि आप इस रिपोर्ट को घटाने–बढ़ाने और अपनी टिप्पणियाँ देने की पहल भी करेंगे। और सबसे जरूरी बात कि हम सब मिलकर अपने कस्बे को फिर से पानीदार बना सकें, यही इस रिपोर्ट की सफलता होगी।

बड़वानी : 24 जुलाई 2003

(श्रीपाद धर्माधिकारी)

अंजड़ और उसके जलस्रोत

मध्य भारत का निमाड़ क्षेत्र उर्वरा भूमि, घने जंगलों और खुशनुमा जलवायु के कारण शुरू से ही महत्वपूर्ण रहा है। पुरातत्वीय खोजें बताती है कि यहाँ हजारों वर्ष पूर्व सुव्यवस्थित बस्तियाँ अस्तित्व में रही हैं। नर्मदा का किनारा होने, उत्तर और दक्षिण भारत के बीच का द्वार होने तथा युद्ध में काम आने वाले अच्छी किस्म के घोड़े तथा हाथी मिलने के कारण सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे इस क्षेत्र ने कई राजे-रजवाड़े देखे हैं।

अंजड नगरपंचायत

स्थापना	– 1908
प्रथम अध्यक्ष	– श्री गोपालजी चौधरी
जनसंख्या (2001)	– 22,890
वर्तमान में	
वार्डो की संख्या	– 15
पक्की सड़कें	– 15.5 किलोमीटर
कच्ची सड़कें	– 7.5 किलोमीटर
सार्वजनिक कुएँ	– 60 (दो बावड़ियों सहित)
सार्व॰ हेण्डपम्प	– 8
नलकूप	– 30
सार्व॰ नल	– 296
निजी नल	– 2101
पेयजल वितरण (एक दिन छोड़कर)	– 55 लीटर/व्यक्ति

स्रोत–नगरपंचायत, अंजड़

आजादी के पहले निमाड़ क्षेत्र पर कलचुरी, गुप्त, हूण, चालुक्य, गुर्जर प्रतिहार, परमार, मुगल, फारूकी, निजाम, पेशवा, गौंड, होल्कर, सिंधिया वंश और अंत में अंग्रेजों ने शासन किया। लेकिन दुर्गम पहाड़ियों में स्थित अवासगढ़ (तत्कालीन बड़वानी रियासत) रियासत मुस्लिम शासकों, मराठों और अंग्रेजों की नजरों से बची रही। सन् 1562 में अकबर ने मालवा के साथ इस रियासत को भी जीत लिया था लेकिन संभवतः पहुँचविहीन पहाड़ी भूभाग होने, कम राजस्व अथवा राणा परसनसिंह द्वारा इस्लाम स्वीकार करने के कारण पुनः इसे आजाद कर दिया था। सन् 1823 की ग्वालियर संधि के बाद अधिकांश निमाड़ ईस्ट

इण्डिया कंपनी के अधीन चला गया था लेकिन बड़वानी रियासत तब भी सुरक्षित रही। साम्राज्यवादी अंग्रेजों ने बड़वानी नरेश राणा यशवंतसिंह की अकर्मण्यता का बहाना बनाकर सन् 1861 में रियासत को अपने कब्जे में जरूर ले लिया था लेकिन उन्हें भी सन् 1873 में ही कानून-व्यवस्था बनाये रखने की चेतावनी के साथ रियासत स्थानीय नरेश को वापस लौटानी पड़ी थी। राणा रणजीतसिंह द्वारा अंग्रेजों की ओर से प्रथम विश्व युद्ध में भाग लेने पर राज्य को अनेक रियायतें मिल गई थीं, जो देश को आजादी मिलने तक जारी रहीं।

पहले बड़वानी रियासत की राजधानी घने जंगलों और पहाड़ों के बीच आज के पाटी ग्राम के निकट अवासगढ़ थी। संभवतः सत्रहवीं सदी के मध्य में राणा चंद्रसिंह (सन् 1640-1675) ने अवासगढ़ रियासत की राजधानी को सिद्धनगर (बड़वानी) स्थानांतरित कर दिया था।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास इस इलाके के भीलों की बहादुरी से भरा पड़ा है। अक्टूबर 1858 में तात्या टोपे के साथ भील सरदार सर्वश्री खाज्या नायक, भीमा नायक तथा मवासिन अपने 4000 समर्थकों की फौज सहित शामिल हुए थे। इन स्वतंत्रता सेनानियों पर मेजर सदरलेण्ड द्वारा राजपुर में हमला किया गया था। दूसरी लड़ाई भीमा नायक के गाँव धाबा बावड़ी में लड़ी गई। इस लड़ाई में भीमा को पकड़ कर देश निकाला दे दिया गया तथा खाज्या शहीद हो गए। श्री सीताराम के नेतृत्व में निमाड़ में जारी भील विद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेजों को होल्करों की मदद लेनी पड़ी थी।

अंजड़ इस इलाके की महत्वपूर्ण बस्ती रही है। सन् 1890 से इसकी पहचान कपास की मण्डी के रूप में रही है। अकबर के शासनकाल में मालवा सूबे का अंजारी (अंजड़) परगना काफी समृद्ध माना जाता था। ''आइना-ए-अकबरी'' के लेखक अबुल फजल के अनुसार यह परगना सुल्तान के खजाने में हर साल 17,07,093 दाम (तत्कालीन मुद्रा) का योगदान देता था। आजादी के पहले कभी खानदेश और कभी मालवा सूबे में रहा यह कस्बा बाद में बड़वानी रियासत का परगना मुख्यालय बना।

अंजड़ को विक्रम संवत् 1542 में बड़वाह के राजा सबलसिंह के बड़े पुत्र तानासिंह ने अमरावती नाम से बसाया था। कहते हैं कि यहाँ के जंगल में अंजन

के पेड़ों की अधिकता के कारण बाद में कस्बे का नाम अंजड़ पड़ा। पश्चिमी निमाड़ के गजेटियर से इस बात की पुष्टि हुई है कि निमाड़ के जंगलों में आधे से अधिक वृक्ष अंजन के थे। नर्मदा और गोई नदियों के बीच वाला इलाका तो अंजन ही का जंगल था। अंजड़ इसी क्षेत्र में पड़ता है।

आजादी के बाद अंजड़ को पश्चिमी निमाड़ (खरगौन) जिले में शामिल कर इसे उप तहसील (टप्पा) बनाया गया। सन् 1998 में इसे नवनिर्मित बड़वानी जिले में शामिल कर लिया गया। लगभग सौ साल पहले इस कस्बे को नगरपालिका का दर्जा प्राप्त हुआ था और 1994 से प्रदेश में लागू त्रिस्तरीय पंचायतीराज प्रणाली के तहत इसे नगरपंचायत बना दिया गया।

जंगल

इस कस्बे पर प्रकृति की कुछ अधिक ही मेहरबानी रही है। घने जंगलों के कारण सूरज डूबने के बाद कस्बे से बाहर निकलना तो दूर एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले में जाना भी मुश्किल हो जाता था। भोंगली नदी पर पानी पीने आये जंगली जानवरों से भी यदाकदा लोगों की भेंट हो जाया करती थी। जिले के गजेटियर के अनुसार क्षेत्र के जंगलों में हाथी भी विचरण किया करते थे। लेकिन बाद में बढ़ती जनसंख्या और खेती के विस्तार हेतु जंगलों की कटाई की गई।

जमीन

अंजड़ एक ऐसे क्षेत्र में बसा हुआ है जिसकी गिनती एशिया की सबसे अधिक उपजाऊ जमीनों में होती है। इस क्षेत्र में खेती का इतिहास सहस्राब्दियों पुराना है। चिखल्दा (धार) में भारतीय पुरातत्वीय सर्वेक्षण विभाग की निगरानी में हुई खुदाई से क्षेत्र में दुनिया के प्रथम किसान समुदाय के प्रमाण मिले हैं। ऐसी मान्यता है कि गेहूँ उत्तर भारत की देन है लेकिन इस खुदाई में मिट्टी की एक कोठी में 3 से 4 हजार साल पुराने गेहूँ के दाने पाये गये। यहाँ सूखे मेवों की खेती होती रही है। आज की खेती को देखकर इस बात पर विश्वास किया जा सकता है कि यह समृद्धशाली परम्परा उस युग में भी जारी रही होगी।

जल

पानी के मामले में तो अंजड़ को कभी कोई चिंता ही नहीं रही। सोसाड़

और भोंगली जैसी दो-दो बारहमासी नदियों का सौभाग्य कितने कस्बों को मिला है? केवल इतना ही नहीं दो कोस की दूरी पर असीम जलराशि वाली नर्मदा भी हैं। कुओं में 6-7 हाथ पर पानी उपलब्ध था।

प्राकृतिक जलस्रोत

कस्बे को दो भागों में बाँटने वाली **भोंगली नदी** का पुराना नाम भोंगावती था। नदी का एक किलोमीटर से अधिक लम्बा हिस्सा आबादी के बीच से होकर गुजरता है, इसलिए निस्तारी कामों में नदी के पानी का सर्वाधिक उपयोग होता था। कस्बे की अधिकांश जनसंख्या नहाने और कपड़े धोने जैसे अधिक पानी के काम नदी पर ही करना पसंद करती थी। इससे घर तक पानी ले जाने के श्रम और समय दोनों की बचत होती थी। सबसे अधिक सुविधा पशुओं को होती थी। वे पानी पीने के साथ जलक्रीड़ा का आनंद भी लिया करते थे। पशुपालकों को बगैर श्रम के सतही पानी उपलब्ध था।

एक समय कस्बे के पश्चिमी किनारे से निकल कर नर्मदा में मिलने वाली **सोसाड़ नदी** को अब कस्बे ने अपने आगोश में ले लिया है। बुजुर्गों के अनुसार कोई 25 वर्ष पहले तक यह नदी बारहों महीने बहा करती थी। आस-पास रहने वाले लोग यहाँ तरबूज-खरबूज की खेती भी करते थे। बैलगाड़ी पर कपास लाद कर लाने वाले किसानों को नदी पार करने में खासी मशक्कत करनी पड़ती थी। जब तक नदी जिंदा

भोंगली नदी

भोंगली नदी कस्बे से कोई 5 किमी दूर रणजीत सागर से प्रारंभ होती है। कस्बे की जितनी सेवा इस छोटी सी नदी ने की है उतनी सेवा अन्य कोई जलस्रोत नहीं कर पाया। एक समय की बारहमासी इस नदी का प्रवाह अब बारिश के कुछ दिनों तक ही सिमट गया है।

कस्बे के बीच से गुजरने वाली इस नदी का सबसे अधिक निस्तारी उपयोग होता था। पूर्व नगरपालिका अध्यक्ष **श्री गोविन्द आवल्या** पुराने दिनों को याद कर बताते हैं कि आधे कस्बे के कपड़े भोंगली पर ही धुलते थे।

नदी ने आसपास के कुएँ-बावड़ियों को भी जिंदा रखा था। जब इसका प्रवाह रूक जाता था तो शिवालय के पास बने बाँध से सारे निस्तारी कार्य होते थे। कुल मिलाकर यह नदी बारहों महिने सेवा करती रहती थी। झाँकियाँ बनाने वाले कलाकार, किसान तथा वर्षों तक कस्बे के पेयजल प्रबंधन में लगे पूर्व पार्षद **श्री खेमाभाई पाटीदार** कहते हैं कि भोंगली की सफाई किये बगैर इसका पूरी क्षमता से उपयोग नहीं हो पायेगा।

थी आसपास के कुएँ लबालब रहते थे। सन् 2002 की बारिश में भी नदी में पानी आने से आसपास के कुएँ और नलकूप रीचार्ज हो गये थे।

मानवनिर्मित जलस्रोत

प्राकृतिक स्रोतों के अलावा कुएँ-बावड़ियों सरीखे जलस्त्रोतों की भी यहाँ एक परम्परा रही है। लेकिन इनमें से अधिकांश का निर्माण किसने तथा कब किया यह ज्ञात नहीं है। सिर्फ चंपा बावड़ी पर एक शिलालेख लगा है, जिसके अनुसार इसका निर्माण स्थानीय मण्डलोई परिवार ने संवत् 1793 (ई. सन् 1736) में किया था। 266 वर्ष पुरानी यह बावड़ी मुख्यतः पत्थरों से बनी हैं। कुछ हिस्सा ईंटों से भी बना है। शिलालेख पर इसका नाम **'राम सरोवर'** लिखा है।

हलाव वाली (टॉकीज की) बावड़ी, सेठ शिप्रुलाल की (स्कूल की) बावड़ी, कुम्हारों की बावड़ी और राम सरोवर यानी चंपा बावड़ी कस्बे की 5 दशक पूर्व की जनसंख्या के हिसाब से पर्याप्त रही होंगीं। लेकिन आपात परिस्थितियों में ये स्रोत कम न पड़ जायें इस लिहाज से कुओं की एक विशाल श्रृंखला तैयार की गई थी। हर मोहल्ले, हर समुदाय के पास अपना कुआँ था। समाज की पानी के मामले में आत्मनिर्भरता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है?

उन दिनों आवागमन के साधन इतने नहीं थे इसलिए पानी का परिवहन मुश्किल था। हर स्थान पर जलस्रोत होने का एक कारण यह भी है। नाके पर, बाजार में, स्कूल में, सड़क किनारे, कचहरी में, मण्डी में, ईदगाह पर, मंदिर-मस्जिद आदि हर उस स्थान पर जहाँ लोगों का आना-जाना लगा रहता था, कुएँ थे। हर मोहल्ले के अलग-अलग कुएँ थे। भावसार मोहल्ले में, बलाई मोहल्ले में, फोंगला गली (पटेल नगर) में, कुम्हार मोहल्ले में, मेहतर मोहल्ले में.....। कस्बे को साफ-सुथरा रखने की बड़ी जिम्मेदारी उठाने वाले मेहतर भी हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों को मानने वाले हैं सो दोनों के कुएँ भी अलग-अलग।

तब, आज की तरह खूब पानी पीकर पकने वाली फसलों का रकबा काफी कम था इसलिए जलस्रोत भी कम थे। खेत में काम करने वालों को पीने का पानी मिल सके इसलिए एक किसान श्री शेख जी ने कस्बे के बाहर दतवाड़ा रोड़ पर एक सुंदर बावड़ी का निर्माण करवाया था और इसीलिए इस बावड़ी को शेख जी की बावड़ी कहा जाता है। 84 वर्ष के एक किसान एवं सेवानिवृत अध्यापक

श्री शालिग्राम मिस्त्री उस दौर को याद करते हुए बताते हैं कि देश की आजादी के पहले से ही खेती में काम करते समय वे इस बावड़ी का पानी पीते थे। श्री मोतीलाल काका (40) के अनुसार भयानक गर्मी में भी इसका पानी शीतल बना रहता है।

अंजड़ यानी अमरावती कस्बे को राजपूतों ने एक गढ़ी बनाकर बसाया था। इस गढ़ी के तो अब कोई अवशेष नहीं बचे हैं लेकिन गढ़ी मोहल्ला आज भी मौजूद है। राजपूतों में पर्दा प्रथा का प्रचलन होने के कारण महिलाएँ कम ही बाहर निकलती थीं। लेकिन पानी के बगैर तो जिन्दा नहीं रहा जा सकता। इसलिए गढ़ी के कुएँ से घरों तक भूमिगत रास्ता बनाया गया था ताकि महिलाएँ पानी भर सकें। अब यह रास्ता बंद कर दिया गया है इसलिए यह पता नहीं चलता कि रास्ता किसी एक घर से जुड़ा हुआ था या फिर सभी घरों से। गढ़ी निवासी श्री सत्येंद्रसिंह मण्डलोई ने अपने समुदाय का इतिहास संजोकर रखने वाले राव से जानकारी निकालकर बताया कि इस कुएँ में

भोंगली से जिंदा रहा मीठा कुआँ

दो दशक पहले तक अंजड़ में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसने भोंगली के किनारे स्थित मीठे कुएँ का नाम न सुना हो। पीने के लिए इसी कुएँ का पानी पसंद किया जाता था। उस समय हाथ ठेले से पानी भर कर अपनी आजीविका चलाने वाले श्री किशन भाई (50) कहते हैं कि कस्बे के हर कोने में इस कुएँ का पानी पहुँचता था।

कुछ लोग पीने के लिए तो अन्य कुओं के पानी का इस्तेमाल कर लेते थे लेकिन फिर भी उन्हें इस कुएँ तक जरूर आना पड़ता था। इस कुएँ के पानी से दाल जल्दी पक जाती थी और स्वाद भी बरकरार रहता था।

सुबह 4 बजे से ही इस कुएँ पर पानी भरने वालों का तांता लग जाता था। हनुमान मोहल्ला, हरिजन मोहल्ला, नाथ मोहल्ला और शिवालय मोहल्ला के मजदूरीपेशा लोग सुबह होने के पहले ही पानी भर लेते थे ताकि वे समय से काम पर जा सकें। कुएँ के अच्छे दिनों के साक्षी श्री मधुभाई तोरनिया के अनुसार दिन का कोई भी पहर ऐसा नहीं बीतता था जब मीठे कुएँ की 16 घिरनियों को चैन मिलता हो। कई बार तो घिरनियाँ खाली नहीं मिलने पर बगैर घिरनियों के पानी खींचना पड़ता था। गर्मी के दिनों में जब कभी भोंगली का प्रवाह रूक जाता था तब आसपास के किसान अपने पशुओं को पानी पिलाने यहीं लाते थे। पास में रहने वाला धोबी परिवार भी अपनी दुकान यहीं जमाता था। याद करने पर भी कोई यह नहीं बता पाता कि हर घर में पहुँचने वाला मीठा कुआँ कभी सूखा हो। भोंगली इसे जिंदा रखती थी।

111 सीढ़ियाँ थीं। संभव है कि आपात परिस्थितियों में गढ़ी से बाहर निकलने हेतु भी कुएँ से होकर कोई सुरक्षित भूमिगत रास्ता हो।

इस व्यवस्था की एक विशेषता थी कि लगभग हर कुएँ पर मनुष्यों के साथ ही पशुओं का भी ख्याल रखा जाता था। कुओं पर कपड़े धोने की जगह और पशुओं को पानी पिलाने के लिए एक हौद यानी हलाव बनाये गये थे। टॉकीज की बावड़ी के पास तो पशुओं का जमघट ही लगा रहता था। खेती के तरीके अलग होने, चरनोई जमीन तथा पानी की पर्याप्त उपलब्धता के कारण तब पशुओं की संख्या भी अधिक थी।

पानी भरने की मुख्य जिम्मेदारी महिलाओं की थी लेकिन कुछ परिवारों के पुरूष भी पानी भरने में मदद करते थे। जिन परिवारों में महिलाएँ पानी नहीं भरती थीं अथवा किसी सामाजिक प्रसंग में अधिक पानी की आवश्यकता होती थी तो मोल से पानी भरवाया जाता था। कस्बे में कुछ परिवार थे जो अपनी आजीविका जल-आपूर्ति करके चलाते थे। आसपास के गाँवों में पखाल से पानी भरा जाना सामान्य बात थी, लेकिन अंजड़ में इस परम्परा का पता नहीं चलता। 15-20 बाल्टी की क्षमता वाली पखाल चमड़े की बनी होती थी, जिसे भैंस अथवा पाड़े से ढोया जाता था।

निजी कुएं- अंजड़ में घरों के अंदर निजी कुएँ भी बड़ी संख्या में हैं। उदाहरण के लिए तीन नंबर वार्ड के 44 घरों में आज भी कुएँ मौजूद हैं। जिन घरों में कुएँ थे वे अपने ही कुओं का पानी इस्तेमाल करते थे। अनेक घरेलू कुओं से घर मालिक के साथ ही पड़ौसी भी पानी भरते थे। पटेलनगर निवासी श्री रमणलाल पाटीदार के घर में 50 वर्ष पुराना कुआँ है। स्वाद के कारण पीने को छोड़कर 13 सदस्यों के परिवार की सारी जरूरतें आज भी इसी कुएँ से पूरी हो रही है। एक दर्जन पशु भी इसी कुएँ का पानी पीते हैं। नल नहीं

पनघट यानी संपर्क केंद्र

कुएँ-बावड़ियों पर सुबह-शाम पनिहारिनों के मेले लगा करते थे। उनके लिए ये मात्र जलस्रोत न होकर बतकही के अड्डे भी थे। यहाँ महिलाओं को घर-गृहस्थी से लेकर सुख-दुख की बातें एक दूसरों से बाँटने का समय मिल जाता था। कस्बे के एक कोने में हुई किसी घटना की खबर पनघट के माध्यम से जंगल की आग की तरह पूरे कस्बे में फैल जाती थी।

आने पर आसपास के 6-7 परिवार भी यहीं से पानी लेते हैं। कस्बे में कुछ निजी कुएँ ऐसे हैं जो आधे तो घर के अंदर हैं और आधे घर के बाहर ताकि इनका उपयोग सार्वजनिक कुओं की तरह भी हो सके। पास-पास रहने वाले दो परिवारों के बीच साझे कुएँ भी दिखाई देते हैं।

फूटला तालाब - 3.385 हेक्टर का फूटला तालाब कस्बे की पूर्वी सीमा पर बना है। कहा जाता है कि जिस वर्ष यह तालाब बना था उसी वर्ष किसी गड़बड़ी के कारण बारिश में टूट गया था। और तब से ही इसका नाम फूटला तालाब पड़ा। दूसरी धारणा के अनुसार तालाब भरने पर इससे रिसन होने लगती थी और बारिश के बाद आसपास की पहाड़ियों से भी पानी रिसता था, इसीलिए इस तालाब को फूटला तालाब कहा गया। इस तालाब में पानी भर जाने पर कस्बे के लगभग आधे कुओं के अलावा आसपास के खेतों के कुएँ भी फिर से भर जाते हैं। इसके पानी का उपयोग निस्तारी कार्यों में होता है।

शिवालय बांध - बरसों पहले शिवालय के पास भोंगली के प्रवाह को रोककर 8 फीट ऊँचा मिट्टी का एक बाँध बनाया गया था। जलाशय के किनारे ही एक सुंदर बगीचा और अमराई थी। तफरीह करने वाले लोग जलाशय के किनारे अपनी शामें बिताते थे।

वक्त, लोग और पानी

1951 (जनसंख्या – 6,594)

कुएँ-तालाब और नदी नालों में भरपूर पानी था। नदियाँ साल भर बहती थीं।

1961 (जनसंख्या –10,509)

कुएँ-बावड़ियों में पानी भरा था। भोंगली और सोसाड़ पूरे वर्ष बहती थी। इन स्रोतों का उपयोग हो रहा था। दशक के अंत में पेयजल व्यवस्था का मशीनीकरण प्रारंभ हुआ।

1971 (जनसंख्या –12,047)

पूरे कस्बे की जल व्यवस्था मशीनीकृत हो चुकी थी। परम्परागत स्रोतों की उपेक्षा का दौर। नदियों का बहाव कम होने लगा।

1981 (जनसंख्या –17,226)

परम्परागत जलस्रोतों ने जबाव दिया। ट्यूबवेल खोदना प्रारंभ हुए लेकिन यह व्यवस्था ज्यादा समय नहीं चल सकी। दशक के मध्य से कस्बा नर्मदा जल आश्रित हो गया।

1991 (जनसंख्या –19,423)

कुएँ-बावड़ी कूड़ेदान बने और भोंगली गंदे पानी का नाला। यदि किसी कारण से नर्मदा से जलप्रदाय बंद हो तो कस्बे की प्यास बुझाना असंभव।

2201 (जनसंख्या–22,890)

जलस्रोतों की स्थिति वही। पेयजल व्यवस्था की स्थिति संतोषजनक नहीं लेकिन इस मद में खर्च का इजाफा तेजी से बढ़ने लगा।

इस जलाशय से कुएँ लबालब होते थे तथा भोंगली का न्यूनतम प्रवाह बनाये रखने में भी मदद मिलती थी। शिकार के शौकीन बड़वानी नरेश यहाँ जल मुर्गियों (रशियन डॅक्स) का शिकार करने आया करते थे। राजा के काफिले के साथ आने वाले हाथियों को यहीं नहलाया जाता था। नगरपंचायत द्वारा जलाशय के किनारे बनाये गये 57 फीट लंबे घाट का उद्घाटन 31 अगस्त 1957 को हुआ था। बाद में जलाशय का पानी सूख जाने पर शिवरात्रि पर यहाँ मेला भरता था।

सागर कहा जाने वाला रणजीत ताल- रणजीत ताल को बड़वानी नरेश रणजीत सिंह के प्रथम विश्व युद्ध से सकुशल वापसी की खुशी में सन् 1920 में बनाया गया था। कस्बे के दक्षिणी छोर पर बसे गाँव सजवाय में बना यह विशाल तालाब करीब 225 एकड़ में फैला है। तालाब को भरने के लिए सोसाड़ से एक फीडर चैनल बनाया गया। इस तालाब का उपयोग सिंचाई के लिए होता है। कोई 200 वर्ष पहले सिरवी और पाटीदार समुदाय के लोगों को बड़वानी नरेश द्वारा आमंत्रित करने तथा उन्हें खेती की जमीनें उपलब्ध करवाने के प्रयास राजपरिवार की खेती में रूचि को दर्शाते है। रणजीत ताल का निर्माण भी इसी श्रंखला की एक कड़ी है। बाद में नहरों का निर्माण कर रणजीत ताल की सिंचाई क्षमता बढ़ाई गई थी। 1200 एकड़ में सिंचाई करने वाला यह तालाब अब सिंचाई विभाग के अधीन है।

कस्बे की बड़ी जनसंख्या सिर्फ पेयजल तथा भोजन बनाने जैसे कामों के लिए कुओं पर निर्भर थी। निस्तारी कार्य नदी-तालाबों पर ही होते थे। जिन्हें नदी दूर पड़ती थी वे अपने सारे काम कुओं के पानी से कर लेते थे। कुओं का जलस्तर ऊपर होने के कारण यह काम बोझिल भी नहीं था।

जन भागीदारी

बड़वानी के अंतिम राजा देवीसिंह का कार्यकाल रियासत में हुए निर्माण कार्यों का स्वर्णिम काल माना जाता है। रियासत में आज दिखाई देने वाले निर्माणों में से अधिकांश देवीसिंह के कार्यकाल में ही हुए हैं। लेकिन जलस्रोत निर्माण सिर्फ राजा-महाराजाओं का ही एकाधिकार नहीं था। समाज हमेशा से पानी पिलाने को पुण्य का काम मानता रहा है। कई स्थानों पर ऐसे कुएं-बावड़ी देखने को मिलते हैं जिन्हें सेठ-साहूकारों के अलावा साधारण किसानों ने भी बनाया

था।

दो बारहमासी नदियों के बावजूद कस्बे में तालाब, कुओं और बावड़ियों की श्रृंखला देखकर सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि उस समय का समाज पानी के प्रति कितना सचेत, और दूरदृष्टा रहा होगा। प्यासे को पानी पिलाकर धन्य समझने वाला जमाना अब बदल गया है, समाज बदल गया है। जब तक यह व्यवस्था जारी थी पानी की कमी महसूस नहीं की गई। यहाँ तक कि 'छप्पनिया अकाल' भी लोगों ने सहा लेकिन तब भी पानी के 'काल' की जानकारी नहीं मिलती। भले ही ये जलस्रोत सत्ता ने बनवाये हों या समाज ने, लेकिन दुर्भाग्य से आजादी के बाद ऐसी परम्परा जारी नहीं रह सकी जिसे पानी की स्वावलंबी व्यवस्था की दिशा में उठाया गया कदम माना जा सके। इन जलस्रोतों में से नलकूपों को छोड़कर बाकी सारे स्रोत आजादी के पूर्व के ही है।

जलस्त्रोतों की वर्तमान दशा

कस्बे के जलस्रोतों की उपरोक्त कहानी पुरानी है। अब स्थितियाँ बदल गई हैं। यहाँ के जलस्रोतों के सूखने का दौर पिछले 20-25 वर्षों से शुरू होता है। सोसाड़ के प्रवाह में भी इन्ही दिनों से कमी दिखाई देने लगी थी और फिर 4-5 वर्षों में तो जलप्रवाह कम होकर बारिश के कुछ दिनों तक ही सीमित रह गया है। इससे पेयजल और निस्तार कार्यों में पानी की उपलब्धता कम हुई ही, नदी तल में तरबूज-खरबूज की खेती करने वाले परिवारों की आजीविका भी प्रभावित हुई है।

आज भोंगली नदी को देखकर अंदाजा लगाना मुश्किल है कि यह कभी बारहमासी रही होगी। बहाव के नाम पर इसमें सिर्फ कस्बे की गटरों का पानी ही दिखाई देता है। नदी तल में अतिक्रमण करके अनेक मकान बनाये जा चुके हैं। नगरपंचायत द्वारा पक्के तटबंधों के निर्माण से नदी का पाट सँकरा होता जा रहा है और इससे कस्बे में बाढ़ का खतरा बढ़ गया है। नदियों के सूखने का सबसे अधिक असर इससे भर (Recharge) जाने वाले कुएँ-बावड़ियों पर पड़ा है।

भोंगली का गंदा पानी भले ही लोगों के लिए समस्या हो लेकिन नगरपंचायत के लिए तो कमाई का जरिया बन गया है। पिछले 6 सालों से नगरपंचायत इस गंदे पानी को सिंचाई के लिए नीलाम कर रही है।

सैकड़ों एकड़ की सिंचाई करने वाले विशालकाय रणजीत तालाब को भी उपेक्षा झेलनी पड़ी है। एक तो तालाब भरने के लिए सोसाड़ पर बनाए गए बराज में रेत (सिल्ट) भर गई थी और पानी फीडर चैनल में जाने के बजाय बराज के ऊपर से निकलने लगा था, इस कारण कुछ वर्शों तक तालाब पूरा नहीं भर पाया इसे सुधारने के लिए बाद में बराज को ऊँचा उठाया गया था। दूसरे 31 फीट गहरे और 225 एकड़ के क्षेत्र में फैले इस तालाब में भी 13 फीट गाद भर चुकी है और 1200 एकड़ की सिंचाई क्षमता सन् 2002 में घटकर 750 एकड़ ही रह गई है।

बनने के बाद फूटला तालाब भले ही फूटा हो या नहीं, लेकिन इस समय तो यह दयनीय हालत में है। तालाब के अंदर ही उत्तर दिशा में कुछ लोगों ने अपने घर बना लिये हैं। इन घरों का गंदा पानी व कचरा तालाब में डाला जाता है जिससे तालाब में गंदगी बढ़ रही है। तालाब के दूसरे छोर पर पूर्व-पश्चिम दिशा में कुम्हारों ने ईंट के भट्टे पकाना शुरू कर दिया है। इससे तालाब में पानी की आवक भी कम हो रही है तथा ईंट को पकाने में इस्तेमाल किये जाने वाले कोयले की राख पानी की गुणवत्ता पर विपरीत असर डाल रही है।

नगरपंचायत ने भी फूटला तालाब को कूड़ेदान की हैसियत पर उतार दिया था। लेकिन कस्बे के जागरूक नागरिकों द्वारा इसके खिलाफ आवाज उठाने पर अब कचरा डालना बंद किया गया है। लेकिन अब तक डाला जा चुका कचरा, विशेषकर प्लास्टिक का कचरा, आज भी तालाब के पानी को प्रदूषित कर रहा है। वाहन भी यहीं धोये जाने लगे हैं। इस तालाब से नाका कुआँ जैसे जलस्रोत भरते (Recharge) हैं अतः ये सारे प्रदूषण जलस्रोतों

16 कुएं लापता

नगरपंचायत के रिकार्ड के अनुसार अंजड़ में 60 कुएँ-बावड़ियाँ हैं, लेकिन इनकी स्थितियाँ ज्ञात नहीं है। इन्हें ढूँढने के प्रयास में हमने नगरपंचायत के वर्तमान एवं पूर्व अध्यक्ष, पत्रकार, वकील, पार्षद, बुजुर्ग व्यक्ति और समाजसेवियों सहित कस्बे के कोई 2 दर्जन लोगों की मदद ली। इससे हमें अनेक कुओं के संबंध में जानकारी मिली। लेकिन इस प्रयास के बावजूद हम अब तक सिर्फ 44 कुएँ-बावड़ियों को ही खोज पाये हैं। इन 44 जलस्रोतों में मिट्टी से भर दिये गये तथा अतिक्रमण कर लिये गये जलस्रोत भी शामिल हैं। शेष 16 कुएँ अभी भी लापता हैं।

तक पहुँच सकते हैं। दीवार टूटने तथा जलग्रहण क्षेत्र की कमी के कारण हालांकि अब यह तालाब पूरा तो नहीं भर पाता लेकिन जितना भरता है उससे भी पालतू पशुओं की कई महिनों की व्यवस्था हो जाती है।

शिवालय मंदिर के पास भोंगली नदी पर बने बाँध की दीवार के अब कोई अवशेष नहीं बचे हैं, सिर्फ पत्थरों से चिना वेस्ट वियर (जलनिकास) वाला भाग ही शेष है। बाँध की दीवार और जलाशय वाले हिस्से पर ठीक नदी तल में अब कई घर बन चुके हैं। आधी सदी पहले नगरपंचायत द्वारा जलाशय के किनारे निर्मित घाट आज भी हैं लेकिन यह अंदाज लगाना मुश्किल है कि यहाँ कभी इतना पानी रहा होगा। ग्राम छोटा बड़दा के किसान श्री कैलाश मण्डलोई कहते हैं कि इसी घाट पर ब्राह्मणों का उपनयन संस्कार होता था।

मीठा कुआँ का उपयोग 12-13 वर्षों से बंद है। इसके चबूतरे का उपयोग कण्डे (उपले) बनाने में हो रहा है। कुएँ के पास रहने वाला भंगार का व्यापारी भंगार को कुएँ के आसपास तथा चबूतरे पर रखता है, जिससे भंगार के साथ आई प्लास्टिक की वस्तुएँ, जूते-चप्पल आदि कुएँ में गिरते रहते हैं। हालांकि पिछले वर्ष

अंजड़ में पानी की जरूरत

55 लीटर प्रति व्यक्ति, प्रतिदिन के हिसाब से अंजड़ में पानी की वार्षिक जरूरत 5,01,875 घनमीटर है। बड़वानी जिले की औसत वार्षिक वर्षा 772.5 मिलीमीटर है लेकिन 500 मिमी वार्षिक वर्षा के आधार पर भी गणना की जाये तो एक हेक्टर जमीन से 5,000 घनमीटर जल संग्रहण संभव है। इस हिसाब से अंजड़ शहर की वार्षिक जरूरत पूरी करने हेतु करीब 100 हेक्टर जमीन का पानी रोकना होगा।

सामान्यतः जलग्रहण क्षेत्र के उपचार का खर्च 6,000 रूपये प्रति हेक्टर आता है। अतः 100 हेक्टर क्षेत्र का उपचार करने का खर्च 6 लाख रूपये होगा। यह खर्च नगरपंचायत द्वारा पानी पर प्रतिवर्ष खर्च की जा रही रकम के एक चौथाई से भी कम है।

जल संग्रहण के कार्यों का लक्ष्य 40 प्रतिशत तक पानी रोकने का होता है लेकिन 25 प्रतिशत संभाव्यता के आधार पर 400 हेक्टर क्षेत्र का पानी रोकने में भी यदि हम सफल हो पाये तो अंजड़ को अपनी जरूरत हेतु किसी बाहरी जलस्रोत पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा।

अंजड़ कस्बे का क्षेत्रफल 1,554 हेक्टर है। कस्बे के एक चौथाई हिस्से का पानी रोकना कठिन नहीं है। जरूरत सिर्फ यह है कि इसे सरकार या नगर निकाय का काम न मान कर जन-जन की जिम्मेदारी समझी जाये।

नगरपंचायत ने इस कुएँ की सफाई करवाई थी लेकिन आसपास की गंदगी के कारण इसका उपयोग नहीं हो पाया।

फोंगला गली (पटेल नगर) के कुएँ के सूखने के कारण अब वहाँ के किसानों को अपने पशुओं को पानी पिलाने टॉकीज की बावड़ी पर ले जाना पड़ता है। बच्चों के गिरने के डर से धवल्या कुआँ को मोहल्ले वालों ने मिट्टी से पूरना प्रारम्भ किया तो नगरपंचायत ने भी इसमें हाथ बँटाया था। सड़क बनाते समय निकली मिट्टी डाल कर इसे पूरा भर दिया गया। अब मोहल्ले वाले कुएँ की इस जमीन पर मंदिर बनाना चाहते हैं।

परम्परागत जलस्रोतों से समाज के सभी समुदायों को पानी प्राप्त करने के समान अवसर उपलब्ध थे। आधुनिकीकरण से यह व्यवस्था प्रभावित हुई है।

10-15 सालों से लगभग सूख चुके त्रिवेणी के कुएँ को मोहल्ले वालों ने बंद करवाने की माँग की थी। लेकिन मोहल्ले के ही अजय पाटीदार ने कुएँ को बन्द करने का विरोध किया और उन्होंने लगभग 1,400 रूपये खर्च कर कुएँ पर जाली लगवा दी। सिर्फ इतना ही नहीं वे अपनी छत पर बरसने वाली बारिश को भी इस कुएँ में डालते हैं।

नाममात्र के पानी वाले पिपल्या कुएँ पर कपड़े धोने वाली महिलाओं और मवेशियों की भीड़ को देखकर लगता है कि जैसे यहाँ पर पानी हो लेकिन वास्तव में ऐसी कोई बात नहीं है। कुएँ के पास बने हलाव को नर्मदा लाईन से भरा जाता है और इसी पानी का उपयोग किया जाता है।

नाका कुआँ, ऑफिस का कुआँ, झामरिया कुआँ, गायत्री मंदिर का कुआँ, टाकीज की बावड़ी और राजपुर रोड़ का कुआँ नर्मदा योजना की भण्डारण टंकी बन गये है। चंपा बावड़ी और शेख जी की बावड़ी का उपयोग सिंचाई के लिए हो रहा है। जलस्तर गिरने के कारण अब इन बावड़ियों में सीढ़ियों से पानी तक पहुँचना संभव नहीं है। विद्यालय परिसर स्थित स्कूल की बावड़ी कूड़ादान बनी हुई है। शिक्षा देने और लेने वाले दोनों ही इसमें हर प्रकार का कचरा डालते हैं। दुःखद बात यह है कि इस बावड़ी में पानी है लेकिन गंदगी के कारण इसका उपयोग नहीं हो पा रहा है। गाँधी वाचनालय के पास के कुएँ को बंद कर उसके

ऊपर नर्मदा के पानी की प्याऊ बना दी गई है। हेला मेहतरों के कुएँ और कुम्हारों की बावड़ी पर घर बन चुके हैं। बलाईयों का कुआँ, कोलियों का कुआँ और लाल बैगियों का कुआँ मिट्टी से भर कर जमीन के प्लॉट बन चुके हैं। बाजारिया कुआँ, चमारिया कुआँ, सोसाड़ का कुआँ, बलाईयों का कुआँ, भावसार मोहल्ले का कुआँ, नाथों का कुआँ आदि के सूख जाने या फिर गंदगी होने के कारण उपयोग बंद किया जा चुका है। शिवालय कुएँ को मोहल्ले वाले बंद नहीं करवाना चाहते, उनका मानना है कि जब भी पानी आएगा इसका उपयोग किया जा सकता है। उन्होंने कई बार नगरपंचायत से कुएँ पर जाली लगवाने की माँग की लेकिन उनकी माँग पर ध्यान नहीं दिया गया। गढ़ी का कुआँ कभी सूखा नहीं है। इसने पिछले वर्ष भी पानी दिया था।

आधुनिकीकरण

आजादी के बाद बस्तियों का विद्युतीकरण शुरू हुआ था। प्रारंभ में हर बस्ती के लिए अलग-अलग विद्युत संयंत्र स्थापित किये गये थे। इस क्षेत्र में सबसे पहले सन् 1949 में 30 किलोवाट क्षमता का विद्युत संयत्र बड़वानी में स्थापित हुआ। लेकिन इनकी क्षमता इतनी नहीं थी कि इनसे बड़ी मशीनें चलाई जा सके। सत्तर के दशक से इन केंद्रों को केन्द्रीय व्यवस्था (चंबल बाँध के बिजलीघर) से जोड़ा जाने लगा जिससे मशीनें चला पाना संभव

हानि का
लेखा-जोखा

अंजड़ में जलभण्डारण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होने के कारण नर्मदा योजना के पानी की 30 प्रतिशत हानि हो रही है। इस हिसाब से 1.5 एमएलडी क्षमता वाली योजना का 450 घनमीटर यानी 4,50,000 लीटर पानी रोज धरती में समा जाता है। महिने में 13,500 घनमीटर तथा वर्ष में 1,62,000 घनमीटर पानी का नुकसान हो जाता है। यानी 1986 से 2001 तक के 16 वर्षों में 25,92,000 घनमीटर पानी का नुकसान हुआ है।

यदि एक किमी चौड़ा और ढाई किमी लम्बा तालाब बनाया जाये और उसमें 16 वर्षों में बरबाद हुए पानी को भरा जाये तो जलस्तर 1 मीटर यानी सवा तीन फीट ऊँचा उठ जायेगा।

2001 से 2.31 एमलडी क्षमता वाली नई नर्मदा योजना प्रारंभ हो चुकी है। पानी के भण्डारण की स्थिति आज भी वही है। अतः पानी के नुकसान की दर भी पूर्ववत् 30 प्रतिशत ही रहेगी। इससे 690 घनमीटर पानी प्रतिदिन व्यर्थ जा रहा है। 2,51,850 घनमीटर वार्षिक हानि से 12,545 लोगों यानी कस्बे की आधी से अधिक आबादी को पूरे साल पर्याप्त पानी दिया जा सकता है।

हुआ। बिजली से चलने वाली मशीनें आई तो कई काम आसान हुए। जल व्यवस्था का भी मशीनीकरण प्रारंभ हुआ। जलवितरण को आसान बनाने हेतु जलस्रोतों पर विद्युत पंप लगाये जाने लगे।

अंजड़ में सन् 1969 में पहला विद्युत पंप टॉकीज की बावड़ी, जिसे हलाव वाली बावड़ी भी कहा जाता है, पर लगाया गया। बावड़ी पर लोहे की टंकी रख कर पास के चार स्थानों - बावड़ी के पास, श्रीकृण चौक, गाँधी चौक और, जटाशंकरी चौक - पर नल लगाये गये। इन नलों में 24 घंटे पानी उपलब्ध रहता था। बाल्टी से खींचने की मेहनत के बदले टोटी घुमाते ही आसानी से पानी मिलने लगा। ऐसा महसूस किया गया मानो 'कठौती' में गंगा आ गई हो। लोगों ने तहेदिल से इस योजना का स्वागत किया। अन्य मोहल्लों में भी इसकी माँग होने लगी। इन दिनों श्री प्रमोदराय सेठ नगरपालिका अध्यक्ष (1969-1973) थे।

बाद में इस सुविधा का विस्तार मीठा कुआँ, पिपलिया कुआँ, नाका कुआँ और फोंगला गली के कुएँ पर भी किया गया और इस तरह नल के माध्यम से कस्बे के समस्त चौराहों तक पानी पहुँचाया गया। लेकिन इसके बावजूद जिनके घरों में कुएँ थे वे लोग कुओं के उथले जलस्तर के कारण नलों से पानी लेने में रूचि नहीं दिखाते थे। कस्बे की पानी संबंधी जरूरतों का एक हिस्सा अभी भी परम्परागत जलस्रोतों पर ही निर्भर था। इसके अतिरिक्त जिन कुओं पर पंप नहीं लगाये गये थे, उनका उपयोग भी परम्परागत तरीके से किया जा रहा था।

नगरपालिका अध्यक्ष श्री गोविन्द आवल्या के कार्यकाल (1979-1983) में सन् 1979 से घरों में निजी नल कनेक्शन दिए जाने लगे। इस दौर में घरेलू नल कनेक्शनों की संख्या 400 तक पहुँच चुकी थी। तब नलों में एक घंटा प्रतिदिन पानी दिया जाता था तथा 5 रूपये मासिक बिल वसूला जाता था। 15 वार्डों में फैली कस्बे की 22,890 जनसंख्या (वर्तमान में लगभग 24,000) के लिए आजकल 2102 घरेलू तथा 296 सार्वजनिक नल लगे हैं।

विकल्पों की तलाश

एक तरफ बढ़ती पानी की माँग की पूर्ति के लिए जलस्त्रोतों से पानी का उलीचना बढ़ाया जाता रहा जबकि दूसरी ओर जलग्रहण क्षेत्रों की खराबी, खेती में पानी के अत्यधिक दोहन, जल संग्रहण आदि पर ध्यान न दिये जाने के कारण

भूजल भण्ड़ारों में पानी की आवक कम होती गई। ऐसे में एक समय आया जब जलस्त्रोत कम पड़ने लगे और अन्य उपायों पर विचार किया जाने लगा। नलकूप के रूप में एक आसान विकल्प सामने आया जो पाताल का पानी खींच लाने में सक्षम था। बिजली की सुविधा थी ही, इसलिए कोई चिंता नहीं थी।

श्री गोंविद आवल्या के कार्यकाल में ही होली टवड़ा, नवलपुरा और भगवान भाई की चक्की में, एक-एक नलकूप खुदवाये गये। इन दिनों नलकूपों का प्रचलन नहीं था इसलिए बड़ी संख्या में लोग सिर्फ यह देखने पहुँचते थे कि ये आखिर खोदे कैसे जाते है? इन तीनों नलकूपों में 100 - 150 फीट पर पर्याप्त पानी निकला। इस तरह कस्बे की अतिरिक्त जरूरत की पूर्ति हुई और जल वितरण के टेंकर नलकूपों से ही भरे जाने लगे।

इस प्रकार के जल वितरण से समाज का सोच बदला है। लगभग मुफ्त में मिली वस्तु को बचाने की चिंता आखिर किसे होगी? बगैर टोंटियों के नलों से बहते पानी को रोकने की कोई कोशिश न तो समाज के स्तर पर की गई और न ही स्थानीय निकाय के स्तर पर। इससे पानी की कृत्रिम माँग बढ़ती गई। तब नलकूपों की गहराई बढ़ाई जाने लगी। माँग के अनुसार पानी उलीचा जाने लगा। अब तो इनमें से कईयों को 600-700 फीट तक गहरा कर दिया गया है लेकिन पानी है कि हाथ ही नहीं आ रहा। सैकड़ों-हजारों वर्षों से अछूता प्रकृति का यह खजाना मात्र कुछ ही वर्शों में खत्म हो गया है। इस प्रकार नलकूपों की नई व्यवस्था ज्यादा साथ नहीं निभा सकी और वे भी जवाब देने लगे।

जब कुएँ-बावड़ियाँ और नलकूप जैसे भूगर्भीय जलस्रोत बेकाम होने लगे तो सतही जलस्रोतों की ओर लौटना तय हुआ। लेकिन अब तक तो नदियाँ भी सूख चुकी थीं। जिन कुओं में थोड़ा-बहुत पानी बचा था उन्हें भी 'नारू रोग फैलाने वाले' दुश्मन घोषित कर उनका उपयोग बंद करवा दिया गया था। अब पानी लायें तो कहाँ से?

प्रथम नर्मदा योजना

इस प्रयोग से कस्बे के अधिकांश जलस्रोत बेपानी होते गए तो नर्मदा का खयाल एकमात्र विकल्प के रूप में आया। राज्य सरकार की मंजूरी पर सन् 1986 में लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग ने नर्मदा से 6.5 किलोमीटर लंबी पाईप

लाईन (जिसमें प्रथम 3 किमी सीमेंट तथा शेष लोहे के पाईप थे) डाली। नर्मदा पर 40 हार्स पॉवर की मोटर लगाई गई तथा जलभण्डारण हेतु गायत्री मंदिर के पास 25,000 गैलन की क्षमता वाली लोहे की टंकी बनाई गई। इस योजना पर 10 लाख रूपये से ज्यादा खर्च हुआ और बिजली बिल भी लगभग 10 हजार रूपये माहवार आया। योजना की क्षमता 1.5 एमएलडी (एमएलडी का अर्थ दस लाख लीटर प्रतिदिन है) थी। इस योजना से कच्चा जल (बगैर शुद्धिकरण के) प्रदाय किया गया। नर्मदा योजना के साथ उन जलस्रोतों का पानी भी वितरित किया जाता था, जिनमें अब भी अल्प मात्रा में पानी शेष था। लेकिन जल भण्डारण पर ध्यान न देने से धरती के पेट में बचा शेष 'अमृत' भी खत्म होता गया। परम्परागत स्रोत पानी देने में असर्मथ हो गये और सारा बोझ नर्मदा योजना पर ही आ गया।

अंजड नगरपंचायत का पानी पर खर्च

वर्ष	आय	व्यय	पानी पर खर्च	खर्च %
2000-01	1,41,12,321	1,14,69,943	19,64,437	13.92
2001-02	1,25,55,712	1,51,53,221	17,17,000	13.68
2002-03	1,08,28,281	1,50,90,084	28,37,333	26.20

स्रोत : नगरपंचायत, अंजड़

कस्बे की सारी जरूरतें पूरी करना नर्मदा योजना के लिए भी संभव नहीं था। उस पर मुख्य पाईप लाईन के सीमेंट वाले पाईप बार-बार फूटने लगे थे। बिजली कटौती बढ़ गई थी, अपनी गति से बढ़ी जनसंख्या और जीवनशैली में बदलाव के कारण पानी की माँग बढ़ती ही जा रही थी। तब पर्याप्त व्यवस्था नहीं होने के कारण नर्मदा योजना के पानी का भण्डारण पुराने कुएँ-बावड़ियों में करना प्रारम्भ किया गया। लेकिन इससे 30 प्रतिशत पानी की हानि होने लगी। नगरपंचायत ने पास के खेतों से पानी लेकर टेंकर द्वारा जल वितरण शुरू किया। टेंकर दिन में 15-20 चक्कर लगाता था, लेकिन इतने बड़े कस्बे के लिए एक टेंकर तो ऊँट के मुँह में जीरा भी नहीं था। नर्मदा योजना के बावजूद गर्मी के दिनों में 6 से 8 दिन में एक बार पानी मिलता था। परेशान नागरिकों ने अपना गुस्सा पीएचई अधिकारियों को पीट कर भी निकाला।

परम्परागत जलस्रोतों से समाज के सभी समुदायों को पानी प्राप्त करने के समान अवसर उपलब्ध थे। आधुनिकीकरण से यह व्यवस्था प्रभावित हुई है। क्रय शक्ति, राजनैतिक सामर्थ्य की कमी आदि कारणों से समाज के कमजोर

तबकों को पानी मिलना कठिन होता गया है। अंजड़ में जहाँ फिलहाल 5000 परिवार होने का अनुमान है, 2102 निजी नल कनेक्शन हैं। शेष 3000 परिवारों के लिए मात्र 296 सार्वजनिक नल कनेक्शन अर्थात 10 परिवारों पर एक नल उपलब्ध है। इन नल कनेक्शन विहीन परिवारों को नगरपंचायत द्वारा निर्धारित मात्रा का केवल 10 प्रतिशत ही पानी मिलता है। परम्परागत व्यवस्था में इतना अंतर नहीं था।

नई नर्मदा योजना

पानी की बढ़ी हुई माँग की आपूर्ति के लिए सन् 1999 में नई नर्मदा योजना स्वीकृत हुई जिस पर मई 2001 से काम जारी है। 1 करोड़ 79 लाख 30 हजार रूपये की लागत वाली इस योजना में अभी तक 6.5 किमी लम्बी मुख्य पाईप लाईन डाली जा चुकी है। गायत्री मंदिर के निकट 6 लाख लीटर क्षमता वाली टंकी बनकर तैयार है। फिल्टर प्लांट का निर्माण तथा कस्बे की पुरानी पाईप लाईनों को बदलना शेष है लेकिन इसकी मुख्य पाईप लाईन का उपयोग करते हुए 30 सितंबर 2001 से कच्चे जल का वितरण प्रारम्भ कर दिया गया है। इस योजना से 55 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के हिसाब से शुद्ध पानी की आपूर्ति की जायेगी। इस योजना की क्षमता 2.31 एम॰एल॰डी॰ है।

बिजली कटौती से बचने हेतु 7 किमी लम्बी 1100 के॰वी॰ की विद्युत लाईन अलग से डाली गई थी लेकिन अब इसमें भी कटौती हो रही है। नतीजे में विद्युत कटौती के समय जल सेवा बहाल रखने हेतु साढ़े चार लाख रूपये का एक डीजल जनरेटर खरीदा गया है। जनरेटर की क्षमता 100 किलोवॉट है और इसे चलाने पर एक घण्टे में 10 लीटर डीजल की जरूरत होती है।

हालांकि अभी यह योजना पूर्ण नहीं हुई है लेकिन इतना काम तो हो ही चुका है कि निर्धारित क्षमता का पानी नर्मदा से उठाकर कस्बे में पहुँचाया जा सके। कस्बे की दैनिक जरूरत 1.37 एमएलडी है और नई योजना की क्षमता इससे कहीं अधिक है। यदि यह योजना अपनी क्षमता का आधा पानी भी प्रदाय करे तो कस्बे को 46 लीटर प्रति व्यक्ति के हिसाब से रोजाना मिल सकता है। लेकिन इसके बावजूद अभी एक दिन छोड़कर पानी प्रदाय किया जा रहा है। पानी की भण्डारण व्यवस्था पूर्ववत् होने से 30 प्रतिशत पानी की हानि अभी भी जारी

है। 15 दिन मिलने वाले पानी के लिए नल कनेक्शनधारियों को 60 रूपये माहवार भुगतान करना पड़ता है। नगरपंचायत सूत्रों के अनुसार फिल्टर प्लांट बनने के बाद यह राशि बढ़कर 100 रूपये प्रतिमाह से अधिक हो जायेगी। निजी नल कनेक्शनधारियों पर नगरपंचायत का लगभग 7 लाख रूपये अर्थात् औसतन प्रत्येक कनेक्शनधारी पर करीब 5 माह के बिल के बराबर की राशि बकाया है।

अभी तक के प्रदर्शन से नई योजना पर कई यक्ष प्रश्न खड़े हुए हैं। यदि योजना की शुरूआत में ही यह स्थिति है तो अगले 4-5 वर्षों में बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए क्या इस योजना से पानी की आपूर्ति संभव होगी? क्या योजना की आँकी गई क्षमता का पूरा पानी मिल पायेगा? अथवा निकट भविष्य में माँग की पूर्ति के लिए अभी से सोचना प्रारंभ करना पड़ेगा? इस पर नगरपंचायत अध्यक्ष श्री राजेन्द्र सोलंकी का कहना है कि कस्बे की पाईप लाईनें पुरानी होने तथा जलवितरण व्यवस्था में बदलाव के कारण वर्तमान अव्यवस्था हो रही है।

हरितक्रांति के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में आये उछाल से किसानों की जेब में पैसा तो आ गया, लेकिन उसके लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। कुछ समय के आर्थिक फायदे के लिए जमीन के अंदर गड़ा धन (पानी) लगभग खत्म हो गया।

परिणाम

पहले कुएँ-बावड़ियों से उतना ही पानी निकाला जाता था, जितनी जरूरत होती थी। नहाने और कपड़े धोने जैसे काम तो जलस्रोतों पर जाकर ही कर लिये जाते थे क्योंकि इससे पानी को ढोने में लगने वाला श्रम बच जाता था। लेकिन नल-जल योजना के आने से शारीरिक श्रम काफी कम हो गया है। हमें जितने पानी की जरूरत होती है भर लेते हैं, बाकी का पानी गटरों में जाता है। इससे पानी के उपयोग के तरीके भी बदले हैं और पानी के प्रति दृष्टिकोण भी। निजी नलों में कोई टोंटियाँ लगाता भी क्यों? पानी का बिल तो पूरा भरना पड़ता है। टूटी पाईप लाईनों की मरम्मत में नगरनिकायों की खस्ता माली हालत आड़े आई है। नतीजे में पानी की माँग दिनों-दिन बढ़ने लगी है। इस व्यवस्था के दूरगामी परिणामों का आकलन ठीक से नहीं कर पाने के कारण आज मुख्य रूप से निम्न नतीजे

सामने आये हैं -

भरोसेमंद जलस्रोतों का खात्मा - परम्परागत स्रोतों से पर्याप्त पानी नहीं मिलने पर अन्य स्रोतों से पानी प्राप्त करना एक तात्कालिक जरूरत थी। लेकिन जब बाहरी स्रोतों से पानी मिलना प्रारम्भ हो गया तो परम्परागत स्रोतों से ध्यान हटा दिया गया तथा उन्हें 'गुजरे जमाने' का मान लिया गया। यहाँ तक कि इस तथ्य को भी नज़रअंदाज कर दिया गया कि हजारों वर्षों से लगभग मुफ्त में पानी उपलब्ध करवाकर समाज को जिंदा रख रहे इन स्रोतों का आपातस्थिति में उपयोग किया जा सकता है।

यह सही है कि परम्परागत स्रोतों ने पानी देना कम या बंद कर दिया था लेकिन इन जलस्रोतों को पुनर्जीवित करने के बजाय तात्कालिक समाधान के प्रयासों को ही परम्परा बना दिया गया। वर्तमान व्यवस्था में किसी अन्य विकल्प पर सोचा ही नहीं जाता, जबकि अनेक कारणों से यह व्यवस्था कम भरोसेमंद है। परम्परागत स्रोतों के खत्म होने से आत्मनिर्भरता में कमी आई है।

भोंगली के रूप में कस्बे को मिला एक भरोसेमंद सतही जलस्रोत उपेक्षा का शिकार होकर एक गंदे नाले में तब्दील हो चुका है। कुएँ-बावड़ियों की इस तरह उपेक्षा की गई है मानो कभी इनकी आवश्यकता पड़ेगी ही नहीं। कुओं को या तो कचरा पेटी में बदल दिया गया है अथवा बच्चों के लिए खतरनाक बताकर उन्हें पूर दिया गया है। मानो बीस-तीस साल पहले, जब कुएँ-बावड़ियों का उपयोग किया जाता था तब, बच्चे थे ही नहीं। कुओं को पूरने में नगरपंचायत भी पीछे नहीं रही। आसानी से तथा बगैर किसी आर्थिक लागत के कस्बे की जरूरत पूरी करने वाले इन स्रोतों के खत्म होने का खामियाजा कस्बा कई रूपों में भुगतने को बाध्य है। इस तरह एक स्वयंसिद्ध एवं भरोसेमंद व्यवस्था का खण्डित हो जाना पानी के दूर होते जाने का सबसे बड़ा कारण है।

जलग्रहण क्षेत्र की दुर्दशा - जलग्रहण क्षेत्र की खराबी और पेयजल व्यवस्था में वैसे तो सीधा संबंध दिखाई नहीं देता लेकिन है जरूर। वर्तमान व्यवस्था में मान लिया गया है कि दूर स्थित नदी जैसे स्रोतों से पानी प्राप्त करना स्थाई तथा भरोसेमंद उपाय है। इसी प्रवृत्ति के कारण जलग्रहण क्षेत्रों की खराबी को रोकने के भी कोई सार्थक प्रयास नहीं किये गये हैं। यदि कस्बे की जल

व्यवस्था आज भी कुआँ-बावड़ी आधारित होती तो निश्चय ही नगरीमाता की पहाड़ी का जंगल कटने से रोक लिया जाता। यह सर्वमान्य तथ्य है कि जंगल कटने से जल संग्रहण कम होता है तथा बारिश का अधिकांश पानी बहकर नदी-नालों में आने लगता है, जिससे बाढ़ की संभावना बढ़ने लगती है। पानी के तेज बहाव ने मिट्टी कटाव बढ़ाया है जिससे खेतों की उर्वरा शक्ति कम हुई है और पहाड़ी क्षेत्रों में पौधारोपण तक कठिन हो गया है। देश में कुओं से सिंचाई का रकबा घट गया है लेकिन नलकूप से सिंचाई का रकबा पचास साल पहले के शून्य प्रतिशत से बढ़कर 36 प्रतिशत हो गया है। इससे नई समस्याएँ पैदा हुई।

बिजली पर निर्भरता - वर्तमान पेयजल व्यवस्था बिजली आधारित होने से बिजली पर निर्भरता बढ़ गई है। बिजली कटौती होने पर कस्बा पानी से वंचित हो जाता है। कुएँ-बावड़ियों जैसे स्रोतों के जमाने में ऐसा कभी नहीं होता था। आज भी यदि ये स्रोत जिंदा होते तो आपात परिस्थितियों में, शारीरिक श्रम से ही सही लेकिन पानी प्राप्त किया जा सकता था। एक तरह से वर्तमान जल व्यवस्था ने लोगों की लाचारी बढ़ाई है।

आर्थिक लागत में वृद्धि - कस्बे की पेयजल योजनाओं का वर्तमान विद्युत व्यय 1,50,000 से 1,70,000 रूपये प्रतिमाह है। पाईप लाईन और मशीनरी के रखरखाव का खर्च 6,50,000 रूपये प्रतिवर्ष बैठता है और जल वितरण में लगे कर्मचारियों का सालाना वेतन 7,50,000 रूपये। 900 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से वर्ष में आठ माह के लिए टेंकर का खर्च 2,16,000 रूपये होता है। इस प्रकार नगरपंचायत के कुल बजट का एक बड़ा हिस्सा तो सिर्फ पेयजल की आपूर्ति में ही खर्च हो जाता है। वर्ष 2002-2003 में नगरपंचायत को 28,37,333 रूपये यानी अपनी कुल आय का एक चौथाई से भी अधिक हिस्सा सिर्फ पानी पर खर्च करना पड़ा था। इस वित्तीय वर्ष में कस्बे से कुल राजस्व प्राप्ति मात्र 28,62,337 रूपये ही हुई थी। दूसरे शब्दों में, कस्बे की समस्त स्रोतों से प्राप्त आय तो मात्र पानी की भेंट चढ़ रही है। यदि चुँगी और पथकर के रूप में राज्य सरकार से मिलने वाला अनुदान बंद हो जाये तो कस्बे की जल व्यवस्था भी बहाल रखना मुश्किल हो जायेगा। अन्य नगरनिकायों की स्थिति भी इससे बेहतर नहीं है। जिला मुख्यालय बड़वानी की नगरपालिका ने

इसी वित्तीय वर्ष में पानी पर 71,01,300 रूपये खर्च किये। यह राशि नगरपालिका की कुल आय का 22 प्रतिशत से अधिक था। पानी पर इतना अधिक खर्च होने का प्रभाव अन्य विकास कार्यों पर भी पड़ता है।

समस्या के संभावित कारण

बारिश - प्रायः सूखे को बारिश से जोड़कर देखा जाता है। 1969 से 2002 तक पिछले 33 वर्षों के बारिश के आँकड़े देखें तो पता चलता है कि वर्षा की मात्रा में उतार चढ़ाव जरूर हुए हैं लेकिन जिले के वार्षिक औसत में कोई बड़ा फर्क

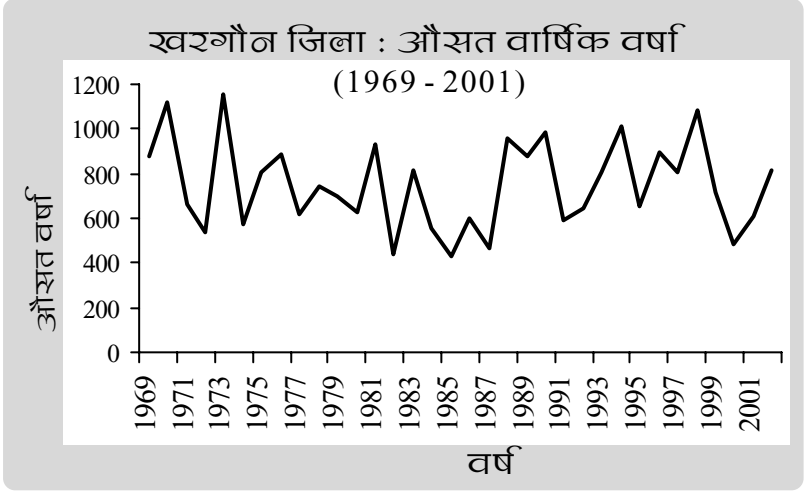

नहीं आया है। लेकिन बारिश की प्रकृति में आये बदलाव से जलसंग्रहण की दर में बड़ा परिवर्तन आया है। अब पानी बरसने वाले दिनों (Rainy Days) और घण्टों में कमी होने लगी है। यानी कि पानी भले ही उतना ही बरस रहा है लेकिन बरसात की तीव्रता बढ़ जाने के कारण प्राकृतिक जलसंग्रहण की दर काफी कम हो गई है। यदि पानी धीमी गति से बरसता है तो संग्रहण अधिक होता है।

हरित कवच - 4-5 दशक पहले तक अंजड़ के आसपास तथा अंदर भी जंगल था। धीरे-धीरे कस्बे के अंदर का तथा बाद में आसपास का जंगल कट गया। बड़वानी रियासत में सन् 1870 से जंगल कटाई के प्रमाण मिले हैं। नाममात्र का टेक्स लेकर परगने के कामदार जंगल काटने का परमिट जारी करते थे। ठीकरी परगने में सन् 1896 में 'जंगल कायदा' बनाकर 'खुद कटाई' प्रथा

शुरू की गई थी। इसके तहत बारह आने प्रति कुल्हाड़ी के हिसाब से शुल्क देकर निर्धारित इलाके में बगैर किसी रोकटोक के एक महीने तक जंगल काटा जा सकता था। जंगल इतना घना था कि खुद कटाई के बावजूद बड़ी मात्रा में लकड़ी सड़ कर खराब हो रही थी। रियासत के राजस्व का बड़ा हिस्सा वनों से मिलता था। जंगल काटने का उद्देश्य खेती का विस्तार भी था। आजादी के बाद भी जंगल कटाई रूक नहीं पाई जिससे आज इतनी विकट स्थिति पैदा हुई है।

जलग्रहण क्षेत्र के जंगल कटने का प्राकृतिक जल भण्डारण पर बुरा प्रभाव पड़ा है। कृत्रिम जल भण्डारण पर ध्यान नहीं देने से जल भण्डारण की दर में कमी और पानी निकालने की दर में वृद्धि का अंतर बढ़ता गया है। आज यह अंतर प्राकृतिक असंतुलन की स्थिति में पहुँच चुका है। ऊपर से वर्षा की प्रकृति बदल गयी है। वर्तमान जरूरतों को पूरा करने के लिए पानी उलीचने की दर दिन प्रतिदिन बढ़ाई जा रही है लेकिन स्थाई व्यवस्था के बारे में सोच-विचार कहीं दिखाई नहीं दे रहा।

वृक्षविहीन जमीन से व्यर्थ बहकर जाने वाला बारिश का पानी सूखे तथा बाढ़ दोनों का कारण बन रहा है। एक तरफ सोसाड़ और भोंगली के सूखने की पीड़ा है तो दूसरी तरफ बाढ़ का खतरा। पिछले वर्ष सितंबर 2002 में भोंगली में आई अप्रत्याशित बाढ़ ने लोगों को चिंता में डाल दिया था।

प्रकृति जीवनदायी संपदा पानी को हमें एक चक्र के रूप में प्रदान करती हैं। हम भी इस चक्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। चक्र को गतिमान रखना हमारी जिम्मेदारी है। चक्र के थमने का अर्थ है हमारी जिंदगी का थम जाना। प्रकृति के खजाने से हम जितना पानी लेते हैं उसे वापस भी हमें ही लौटाना है।

जीवनशैली में बदलाव – जल समस्या के लिए जनसंख्या वृद्धि से कहीं अधिक जीवनशैली में बदलाव जिम्मेदार है। पिछले कुछ दशकों में ग्रामीण क्षेत्र से लेकर शहरों तक जीवनशैली में बड़ा परिवर्तन हुआ है। इस बदलाव से प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर पानी के प्रति हमारे दृष्टिकोण में भी बड़ा अंतर आया है और नतीजे में पानी का उपयोग कई गुना बढ़ा है। पानी प्राकृतिक उपहार न होकर उपभोग की एक ऐसी वस्तु बन कर रह गया है, जिसे उपलब्ध करवाना

नगरनिकायों की जिम्मेदारी है। इस बात का अहसास कम ही हो पाता है कि प्राकृतिक जल भण्डारों को भरने की जिम्मेदारी भी हमारी ही है।

बदलता फसलचक्र – इस क्षेत्र ने पिछले तीन दशकों में खेती में बड़ा बदलाव देखा है। हरितक्रांति के साथ अधिक पानी पीने वाले संकर बीज आये। फसलचक्र बदला। नगदी फसलों का रकबा बढ़ा। क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में आये उछाल से किसानों की जेब में पैसा तो आ गया, लेकिन उसके लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। कुछ समय के आर्थिक फायदे के लिए जमीन के अंदर गड़ा धन (पानी) लगभग खत्म कर दिया गया। खेती में रासायनिक खादों और कीटनाशकों के उपयोग ने मिट्टी की प्राकृतिक जलधारण क्षमता पर विपरीत प्रभाव डाला है। कुओं के अंदर आड़े-तिरछे छेद (bore) करके दूसरी झिरों (एक्वीफर) का पानी खींचने का प्रयास भी आखिर भूगर्भ जल की कमी के कारण सफल नहीं हो सका है।

स्थाई समाधान का अभाव – परम्परागत जलस्रोत नाकाफी हुए तो सन् 1986 में नर्मदा से पाइप लाईन डाली गई। इस योजना के अपर्याप्त महसूस होने पर सन् 2001 में अधिक क्षमता वाली नई योजना का काम प्रारम्भ किया गया। संभव है अगले कुछ वर्षों तक यह हमारी जरूरत पूरी कर सके। लेकिन इसके बाद फिर इससे बड़ी योजना की जरूरत होगी। फिर इससे बड़ी,.....फिर इससे बड़ी। और जब तक नर्मदा में पानी रहेगा तब तक शायद यह सिलसिला जारी रहेगा।

सीमेंटीकरण – घनी आबादी वाले नगरीय क्षेत्रों में वर्षाजल के प्राकृतिक संग्रहण की संभावना काफी कम होती है। बस्तियों की अधिकांश जमीनों पर घर बने होते हैं। सिर्फ गलियाँ और मैदान आदि ही ऐसे स्थान होते हैं जहाँ से जल संग्रहण हो सकता है। लेकिन नगरीय क्षेत्रों में बढ़ते सीमेंटीकरण के कारण जल संग्रहण की यह छोटी सी संभावना भी लगभग समाप्त हो चुकी है। अंजड़ की केवल गलियाँ ही नहीं घरों के इर्दगिर्द छोटे मोहल्लाई मैदानों में भी सीमेंट बिछवा दिया गया हैं। अब तो इसे विकास के एक पैमाने के रूप में देखा जाने लगा है। कम सीमेंटीकरण वाला वार्ड पिछड़ा माना जाता है।

नदी के तटबंध – भोगली नदी के तल की जमीन के उपयोग हेतु नगरपंचायत

ने सन् 1994 से नदी के तटबंध बनाने का काम शुरू किया था जो अभी भी जारी है। अब तक नदी तल का अधिकांश हिस्सा सीमेंटीकृत हो चुका है। सीमेंट के तटबंध बनाने के उद्देश्य थे - गंदगी कम करना, हाट के दिन यातायात व्यवस्था सुधारना और हाट के लिए स्थान बनाना आदि। इनमें नदी तटों को सँकरा कर उससे प्राप्त होने वाली जमीन का व्यावसायिक उपयोग भी एक लक्ष्य रहा है।

खतरे

नदी आधारित पेयजल योजनाओं के अपने खतरे हैं। इन खतरों से अंजड़ की पेयजल योजना भी परे नहीं है। इन में से कुछ तो ऐसे हैं जिनकी अभी तो कोई संभावना भी दिखाई नहीं देती, लेकिन फिर भी ये खतरे हैं तो सही, जो आगामी कुछ वर्षों में सामने आ सकते हैं। भविष्य के जलनियोजन के लिए इन खतरों को जानना जरूरी है।

सरदार सरोवर बांध - नर्मदा पर निर्भर जल योजनाओं के लिए गुजरात में निर्माणाधीन सरदार सरोवर परियोजना बाधक बन सकती है। सभी संबंधित राज्यों पर बंधनकारी नर्मदा पंचाट के फैसले के अनुसार इस जलाशय में रूके पानी पर गुजरात सरकार का अधिकार होगा। ऐसी परिस्थिति में बाँध बनने के बाद गुजरात सरकार जलाशय से पानी लेने पर रोक लगा सकती है। केवल इतना ही नहीं, गुजरात को उसके निर्धारित हिस्से का पूरा पानी मिल सके इस हेतु खण्डवा के निकट नर्मदा सागर बाँध (इंदिरा सागर) बनाया जा रहा है। जरूरत के समय नर्मदा सागर में संग्रहित पानी गुजरात को उपलब्ध करवाना पहली प्राथमिकता होगी। यदि नर्मदा सागर और औंकारेश्वर जैसे बहुउद्देशीय बाँध सरदार सरोवर के पहले बनते हैं तो इनसे होने वाली सिंचाई से निचवास (down-stream) में जलबहाव में भारी कमी आयेगी। संभव है जलबहाव शून्य हो जाये।

जलाशय के पानी की शुध्दता - बड़े जलाशयों में भारी मात्रा में डूबे जंगलों, वनस्पतियों एवं अन्य प्रदूषकों के कारण पानी की शुद्धता संदिग्ध होती है। पानी में ऑक्सीजन की मात्रा घट सकती है और मीथेन व हाइड्रोजन सल्फाईड जैसी गैसें उत्पन्न हो सकती है जिससे पानी की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। पारे व अन्य खनिज से परिपूर्ण मिट्टी-पत्थर पानी को दूषित कर सकते हैं और इन पदार्थों की पहले मछलियों में तथा बाद में इंसानों के शरीर

में पहुँचने की संभावना होती हैं। चूँकि अंजड़ की नर्मदा योजना का पम्प हाउस सरदार सरोवर के जलाशय क्षेत्र में है, अतः स्वास्थ्य संबंधी उपरोक्त खतरों की आशंकाओं से इनकार नहीं किया जा सकता।

बिजली की अनिश्चितता - बिजली कटौती से अस्त-व्यस्त होते जनजीवन को हम अनुभव कर रहे हैं। इससे पेयजल व्यवस्था भी प्रभावित हुई है। बिजली क्षेत्र में हो रहे बदलावों के कारण निकट भविष्य में भी ऐसी अव्यवस्था जारी रहने का अंदेशा हैं। अतः पेयजल जैसी आवश्यक सेवा को सुचारू रूप से जारी रखने हेतु ऐसी वैकल्पिक व्यवस्था, जिसमें बिजली पर निर्भरता कम हो, पर विचार जरूरी है। हालांकि अधिकांश नगरनिकायों ने बिजली के विकल्प के रूप में बड़े डीजल जनरेटरों को अपनाया है, लेकिन यह आर्थिक दृष्टि से और भी अधिक महँगा सौदा है।

नर्मदा के जलबहाव में कमी - अभी तक नर्मदा को स्थायी स्रोत मानकर पेयजल योजनाएँ बनाई जा रही है। इंदौर में 1970 से नर्मदा का पानी ले जाया जा रहा है। खरगौन और खण्डवा जैसे शहर भी नर्मदा की माँग करने लगे हैं। लेकिन आँकड़े बताते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों और कार्यों के लिए नर्मदा जल के दोहन से इसके वार्षिक जल बहाव में कमी आ रही है। इससे नर्मदा

भोंगली के तटबंध

रिहायशी क्षेत्रों में जमीन के आसमान छूते भावों के कारण नगरनिकाय भी ऐसी जमीनों से लाभ लेने में पीछे नहीं है। अतिक्रमण से बची नदी-नालों की ऊबड़-खाबड़ सार्वजनिक जमीनों के उपयोग के नये-नये तरीके निकाले जाते हैं। भोंगली नदी के तल का एक बहुत बड़ा क्षेत्र आबादी के मध्य तथा व्यावसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी उद्देश्य से अंजड़ नगरपंचायत द्वारा भोंगली नदी के तटबंधों का निर्माण किया जा रहा है।

तटबंध निर्माण से एक ओर जहां नदी का जल संग्रहण क्षेत्र कम हुआ है वहीं दूसरी ओर इसके प्राकृतिक बहाव में बाधा उत्पन्न होने लगी है। बाढ़ का अतिरिक्त पानी निकलने का रास्ता सँकरा हो गया है। कुल मिलाकर इस कार्य से नदी तल तो ऊपर उठ गया है लेकिन कस्बा अपने पूर्व के स्तर पर ही है। इससे कस्बे में बाढ़ की संभावना बढ़ गई है। सितंबर 2002 में अंजड़ में अचानक आई बाढ़ का एक कारण तटबंध भी रहे हैं। पूर्व विधायक और स्वतंत्रता सैनानी **श्री माँगीलाल व्यास** ने कहा कि उन्होंने अपने जीवन में ऐसी बाढ़ नहीं देखी जिसने मात्र घण्टे भर में आधे से अधिक कस्बे को अपनी गिरफ्त में ले लिया हो। नदी तल में बने घरों ने बाढ़ के समय नदी की धारा को दूसरी तरफ मोड़ दिया था। इसके पहले कि लोग कुछ समझ पाते भोंगली उनके द्वार पर दस्तक दे चुकी थी।

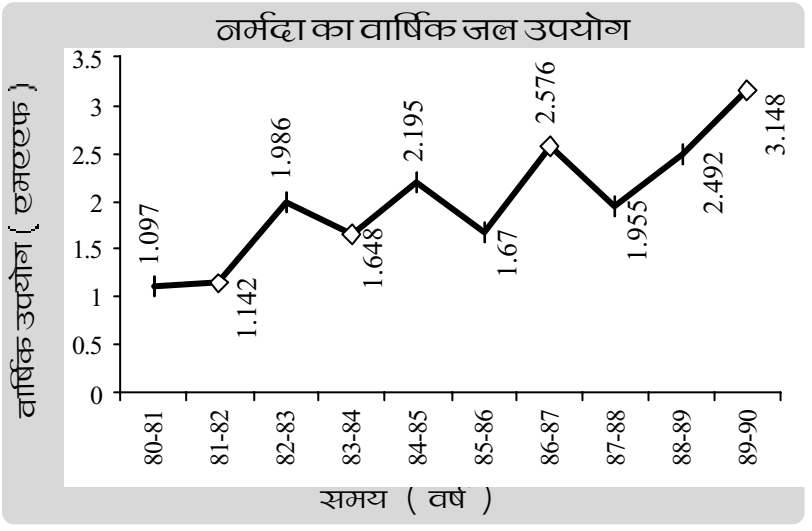

आधारित जल योजनाओं का भविष्य चिंताजनक दिखाई देता है।

आर्थिक बोझ - 'अर्थ' नगरनिकायों की नाजुक नब्ज है। पेयजल योजनाओं के बढ़ते खर्च ने इसे और नाजुक बना दिया है। लेकिन इस व्यवस्था में बदलाव की दिशा में पर्याप्त सोच-विचार अभी भी नहीं किया जा रहा है। अंजड़ नगरपंचायत ने वर्ष 2002-03 में करों के रूप में कस्बे से प्राप्त समस्त राजस्व राशि को 'पानी' में डाल दिया था। इस वर्ष में 24,000 जनसंख्या की पेयजल व्यवस्था पर 118 रूपये/व्यक्ति/वर्ष के हिसाब से खर्च किया है। बड़वानी नगरपालिका ने इसी अवधि में इसी मद पर 169 रूपये/व्यक्ति/प्रतिवर्ष खर्च किया गया। यह भी देखा जा रहा है कि वर्तमान व्यवस्था का खर्च वर्ष-दर-वर्ष बढ़ता ही जा रहा है। यह आर्थिक बोझ उठाना अभी भी मुश्किल है लेकिन इसके 'असहनीय' होने में ज्यादा वक्त नहीं लगेगा। तब पेयजल की क्या व्यवस्था होगी?

विकास के नये रूझान के अनुसार सरकार मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध करवाने की जिम्मेदारी से भी मुकर रही हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, पानी आदि सबका निजीकरण प्रारंभ कर दिया गया है। दिसंबर 2003 में एशियाई विकास बैंक से कर्ज लेकर प्रदेश के 6 महानगरों में पानी व्यवस्था का निजीकरण प्रारंभ कर भी दिया है। अंजड़ जैसे कस्बों में भी शायद निजीकरण का आसान सा

रास्ता नजर आये। लेकिन महत्वपूर्ण सवाल यह है कि निजीकरण के बाद कस्बे के कितने प्रतिशत लोग पानी खरीद सकेंगे?

वर्षा जल एकमात्र हल

दुनिया की प्राचीनतम संस्कृतियों का उद्‌गम ओर विकास नदियों के किनारों पर ही हुआ है। नर्मदा घाटी की संस्कृति भी पुरातन संस्कृतियों में से एक है। छोटा बड़दा और छोटी कसरावद में शुतुरमुर्ग के अण्डे, हथनोरा (खण्डवा) में 10 लाख वर्ष पुरानी मानव खोपड़ी (Homonid Skull), नरसिंहपुर में डायनासौर का कंकाल, खापरखेड़ा (धार) में दुनिया की सबसे पुरानी लकड़ी की मोहर, पिपरी का 4000 वर्ष पुराना व्यापारिक संपर्क, चिखल्दा में प्रथम किसान समुदाय के प्रमाण आदि इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। दो नदियों के तट पर अंजड़ को निश्चय ही पानी की भरोसेमंद व्यवस्था के कारण बसाया गया होगा।

जब अंजड़ बसा होगा उस समय साधनों के अभाव के कारण पानी के परिवहन के बारे में नहीं सोचा जाता होगा। इसलिए पानी की आत्मनिर्भरता जरूरी मानी गई होगी। इतिहास में ऐसे भी उदाहरण हैं जब पानी की कमी होने पर पूरी बस्ती ही स्थान बदल लिया करती थी। लेकिन अब तो जमाना बदल गया है। समाज भी बदला है। अब कितनी ही दूर से पानी का परिवहन किया जा सकता है। और बात जब पेयजल की हो तो आर्थिक तथा अन्य सभी कारण गौण हो जाते हैं। यह बात अलग है कि अधिकांश नगरनिकायों को पानी पिलाने जैसे आसान से काम में काफी पसीना बहाना पड़ रहा है। जल संकट के तात्कालिक हल की आपाधापी में इस सार्वत्रिक सत्य को भुला दिया जाता है कि जिस पानी को लेकर हर कोई परेशान है वह तो हमारे 'हाथ' से ही निकल कर जाता है।

पानी की समस्या के लिए बारिश की कमी का कारण बताकर इस मुद्दे पर किसी बहस को ही समाप्त कर दिया जाता है। लेकिन क्या वास्तव में अब इतनी कम बारिश होने लगी है कि हमें पीने के लिए भी पानी नहीं मिले? पिछले 2-3 दशकों में बारिश की प्रकृति में बड़ा परिवर्तन आया है। लेकिन अभी भी स्थिति उतनी चिंताजनक नहीं है। कमी सिर्फ हमारे प्रयासों की है। बारिश की प्रकृति में बदलाव के अंतर्राट्रीय कारण भी है लेकिन क्षेत्रीय प्रयासों से इसके

प्रभाव को अवश्य कम किया जा सकता है।

बड़वानी की औसत वार्षिक वर्षा 772.5 मिमी है। सन् 1969 से 2002 तक के 33 वर्षों में केवल 4 वर्ष ही ऐसे आये जब बारिश 500 मिमी से कम हुई। सन् 1982 से 87 के वर्ष इस क्षेत्र का भीषण सूखे का दौर रहा है लेकिन इन वर्षों में भी कभी 433 मिमी से कम बारिश नहीं हुई। सन् 2000 में 420 मिमी बारिश हुई जो इन 33 वर्षों में सबसे कम थी। लेकिन 420 मिमी बारिश क्या कम है? यदि 420 मिमी की दर से एक हेक्टर जमीन से 42,00,000 लीटर या 4,200 घनमीटर (1 घनमीटर द्रव 1000 लीटर के बराबर होता है) पानी इकट्ठा कर सकते है। अंदाजा लगाएं पानी की यह मात्रा कितनी बड़ी है? यदि नगरपंचायत द्वारा निर्धारित 55 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के हिसाब से इस पानी का वितरण किया जाये तो इससे 209 लोगों को पूरे साल पानी दिया जा सकता है। इतने ही पानी से एक हेक्टर जमीन में गेहूँ की फसल (कम पानी वाली, 3 सिंचाई तक) परम्परागत तरीके से सिंचाई कर ली जा सकती है।

राष्ट्रीय स्तर पर किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार देश की औसत

छत से जल संग्रहण

घर की छत पर बरसे पानी को इकट्ठा करना (Roof Top Water Harvesting) आसान है। इसमें छत का पानी जमीन में उतारा जाता है। पश्चिमी राजस्थान में छत का पानी घरों में विशेष रूप से बनाये गये तहखानों में इकट्ठा किया जाता है, जिसका उपयोग पूरे वर्ष भर पीने में किया जाता है।

छत के पानी से कुएँ तथा नलकूप रिचार्ज किये जा सकते हैं। जमीन की सतह के पानी को सूर्य भाप बनाकर उड़ा देता है लेकिन जमीन के अंदर संग्रहित पानी को नहीं।

संग्रहित पानी की शुद्धता बहुत जरूरी है। यदि हम अशुद्ध पानी को जलस्रोत में डाल देंगे तो वह पूरे जलभण्डार (Acquifer) को ही प्रदूषित कर सकता है और प्रदूषित जलभण्डारों के उपचार का कोई तरीका नहीं है।

बारिश के दिनों में छत साफ हो। पहली बारिश का पानी जलस्रोत में नहीं डालें। ऐसा करने से जलस्रोत प्रदूषण से बचे रहेंगे। वर्षा जल को रेत छन्नों (Sand Filters) से गुजारकर ही जलस्रोत में डालें। पानी का उपयोग हमें ही करना है अतः सावधानियाँ जरूरी है।

यदि किसी घर की छत 10 गुणा 10 फीट (100 वर्ग फीट) की है और औसत वार्षिक वर्षा 500 मिमी है तो 4,647 लीटर पानी संग्रहित किया जा सकता है। 55 लीटर प्रतिदिन के हिसाब से इस पानी को कोई व्यक्ति 82 दिनों तक उपयोग कर सकता है।

वार्षिक वर्षा 1100 मिमी के आधार पर पीने और घरेलू उपयोग के पानी की व्यवस्था मात्र 1 प्रतिशत वर्षा बूँदों को सहेज लेने भर से हो सकती है। यहाँ घरेलू उपयोग के लिए पानी की आवश्यकता 100 ली०/व्यक्ति/दिन मानी गई है। टाटा एनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट (टेरी) द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार सन् 1997 में देश में घरेलू, सिंचाई, औद्योगिक क्षेत्र व ऊर्जा के उत्पादन हेतु कुल 564 घन कि०मी० पानी की जरूरत थी जो कुल वर्षा का मात्र 16 प्रतिशत है।

कुल मिलाकर यह साफ है कि सिर्फ बारिश की बूँदों के रूप में बरसने वाला ''अमृत'' ही हमारा जीवन बचा सकता है। इसे सहेजने हेतु निम्न सुझावों पर अमल किया जाना चाहिये -

- यह सही है कि शहरों में जल संग्रहण हेतु अपेक्षाकृत कम स्थान उपलब्ध है। लेकिन बारिश का पानी गलियों में पहुँचने के पहले छतों पर गिरता हैं। क्यों न छतों से ही पानी को जमीन में उतारने का प्रयास करें। छतीय जल संग्रहण (Roof Top Water Harvesting) से निजी

ये राह दिखाने वाले.....

इजराईल - इजराईल का क्षेत्रफल 20,700 वर्ग किमी है, जबकि भारत का 32 लाख 87 हजार 263 वर्ग किमी। यानी भारत इजराइल से 160 गुना बड़ा है। छत्तीसगढ़ विभाजन के बाद भी बचे मध्यप्रदेश का क्षेत्रफल इजराइल से 14 गुना अधिक है। इजराइल का अधिकांश भूभाग रेगिस्तानी है तथा औसत वार्षिक वर्षा बहुत ही कम है। लेकिन विश्वविख्यात जल प्रबंधन प्रणाली के कारण इस छोटे से देश के कृषि उत्पादों का निर्यात हमारे देश के कुल कृषि निर्यात के बराबर है। इजराइल ने कृषि क्षेत्र में पानी की बचत पर सबसे अधिक ध्यान दिया है।

जैसलमेर - हमारे देश में सब जगह समान बारिश नहीं होती। कहीं साढ़े तीन मीटर तो कहीं मात्र 16 सेंटीमीटर। लेकिन हम भाग्यशाली हैं कि कहीं भी इतनी कम बारिश नहीं होती कि वहाँ के समाज को जीने में कठिनाई आये। पर्यावरणविद् एवं वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता श्री अनुपम मिश्र ने जैसलमेर (राजस्थान) का वर्णन करते हुए अपनी किताब ''आज भी खरे हैं तालाब'' में लिखा है-

''यहाँ देश की सबसे कम 6 इंच बारिश होती है। यहाँ एक भी बारहमासी नदी नहीं है। 120 दिन की वर्षा ऋतु यहाँ अधिकतम 10 दिन ही बरसती है। भूजल का स्तर 400 फीट तक है। जिले के 1.75 प्रतिशत गाँवो में बिजली, 19 प्रतिशत गाँवों में पक्की सड़कें, 30 प्रतिशत गाँवों

जल स्रोतों के साथ ही सार्वजनिक जलस्रोतों को भी फिर से भरा (रीचार्ज) जा सकता है। इस काम के लिए सरकारी मदद भी मिल सकती है।

- गली-मोहल्ले में बहने वाले बारिश के पानी को सोख्ता गड्ढों के माध्यम से रोकें।
- छत का पानी जलस्रोत में संग्रहित करना संभव न हो तो उसे भी सोख्ता गड्ढे के माध्यम से जमीन में उतारें।
- अंजड़ एवं उसके आसपास स्थित जलग्रहण क्षेत्र में जल संग्रहण की योजनाएँ बनाकर व्यापक रूप से पानी रोकने का अभियान चलाया जाये। पानी रोकने हेतु वृक्षारोपण के साथ ही जमीन के ऊपर तथा जमीन के अंदर अधिकाधिक पानी रोकने का प्रयास किया जाये। अंजड़ का यह सौभाग्य है कि इसके आस-पास पानी रोकने के पर्याप्त संसाधन उपलब्ध है। कस्बे के बीचों-बीच गायत्री मंदिर से लेकर नगरी

में डाक सुविधा और 9 प्रतिशत गाँवों में चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है। लेकिन पानी की व्यवस्था 99.78 प्रतिशत गाँवों में है। जिले के 462 गाँवों में से सिर्फ एक गाँव को छोड़ हर जगह पीने के पानी का पुख्ता प्रबंध है। गौरतलब है कि पानी का यह प्रबंध सरकार ने नहीं बल्कि समाज ने स्वयं किया है।''

सौराष्ट्र - गुजरात के सौराष्ट्र इलाके में बारम्बार पड़ने वाले सूखे से कौन वाकिफ नहीं है? 15-16 इंच औसत बारिश वाले राजकोट जिले के राज समढियाला गाँव की भी यही नियति थी। पानी की कमी के कारण न सिर्फ मनुष्यों को बल्कि पशुओं को भी पलायन करना पड़ता था। लेकिन 10 वर्ष पूर्व सरपंच बने श्री हरदेवसिंह जाडेजा के प्रयासों ने गाँव की तस्वीर ही बदल दी है। वर्षा जल को रोकने से गाँव की न सिर्फ पेयजल की आवश्यकता पूरी हुई है बल्कि सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी भी मिलने लगा है। आज भी सौराष्ट्र में उतनी ही वर्षा हो रही है लेकिन राजसमढियाला समृद्ध एवं अन्य गाँवों से अलग बना हुआ है।

पश्चिमी म.प्र. - मध्यप्रदेश में भी पिछले कुछ वर्षों से जलसंकट पैदा हुआ है, इस कारण सरकारी और गैरसरकारी दोनों ही स्तरों पर पानी बचाने के अभियान प्रारंभ हुए हैं। हालांकि इसमें अभी भी पर्याप्त जनभागीदारी का अभाव है लेकिन 'जागृत आदिवासी दलित संगठन' (पाटी, बड़वानी) एवं 'पानी विकास समिति' (रूपखेड़ा, खरगौन) द्वारा पानी के काम में समाज को जोड़ने का उल्लेखनीय प्रयास किया गया है।

माता तक 88.561 हेक्टर का पहाड़ है। यदि इसमें अंजड़ कस्बे की सीमा में चकेरी पहाड़ और गाय बयड़ा का रकबा (34.304) भी जोड़ दिया जाये तो कुल उपलब्ध जमीन 122.865 हेक्टर हो जायेगी। यहाँ पर वनीकरण एवं पानी रोकने के अन्य कार्य किये जा सकते हैं। यहाँ संग्रहित होने वाला पानी कस्बे का जलस्तर बढ़ाकर जलस्रोतों में प्रकट होगा। दोनों नदियों में अनेक स्थानों पर पानी रोका जा सकता है। कस्बे के आसपास मसाण्या नाला, लेण्ड्या नाला, चिली नाला, चमारिया नाला आदि हैं जिनमें पानी रोककर कस्बे का जलस्तर बढ़ाया जा सकता है।

- जलस्रोतों की जमीन पर अतिक्रमण अथवा उन्हें नष्ट करने के प्रयास को सख्ती से रोका जाये तथा नगरीय निकाय भी जलस्रोतों की जमीन के अन्य उपयोगों में सावधानी बरतें और छतीय जल संग्रहण को प्रोत्साहन दें।
- पुराने एवं उपेक्षित पड़े परम्परागत जल स्रोतों (जैसे फूटला तालाब, भोंगली नदी का तालाब तथा कुएँ-बावड़ियों) की मरम्मत कर उन्हें उपयोग में लाया जाये। ऐसा करने से नये स्रोतों की अपेक्षा काफी कम खर्च में हमें पानी मिलना शुरू हो जायेगा। संभव है अब इन जलस्रोतों का उपयोग पूरी तरह परम्परागत तरीकों से न हो सके लेकिन यदि आधुनिक तरीकों से उपयोग हुआ तो भी ये स्रोत नर्मदा की अपेक्षा कई गुना ऊर्जा और समय की बचत करने वाले सिद्ध होंगे।
- पानी बचाना हमारी सामाजिक जिम्मेदारी है। शादी-ब्याह एवं अन्य सामाजिक प्रसंगों के खर्च में कटौती कर इस पैसे का उपयोग पानी बचाने के कामों में किया जाना चाहिये।
- पुनर्उपयोग (Recycle) से पानी की माँग घटाकर आधी की जा सकती है। रसोई घर से निकले पानी का उपयोग पेड़-पौधों के लिए किया जा सकता है। नहाने और कपड़े धोने के बाद बचे पानी का टायलेट फ्लश करने में प्रयोग हो सकता है।

योजना के लाभ

- वर्तमान परियोजना में सबसे अधिक व्यय नर्मदा से पानी उठाने (लिफ्ट

करनें) में होता है। वर्षा जल भण्डारण से प्रतिवर्ष बिजली बिल के रूप में खर्च की जाने वाली रकम काफी घट जायेगी क्योंकि पानी को 6 किमी दूर स्थित नर्मदा से लिफ्ट नहीं करना पड़ेगा।

- क्षेत्र का भू-जलस्तर (Water Table) ऊपर उठने से ऊर्जा (बिजली, डीजल) की बचत होगी तथा उन पर निर्भरता भी कम होगी।
- जमीन का जलस्तर ऊँचा उठने से कस्बे के जलस्रोतों का परम्परागत तरीकों से उपयोग बढ़ेगा तथा जलस्रोत जीवित होने से जल संकट के समय उपयोग का विकल्प हमेशा खुला रहेगा।
- जल स्तर ऊँचा उठने का लाभ कस्बे के आसपास के खेतों को भी होगा। सिंचाई हेतु उपयोग में आने वाली ऊर्जा की बचत होगी तथा भूजल भण्डार बढ़ने से सिंचित खेती का रकबा बढ़ेगा।
- जमीन में नमी बढ़ने का लाभ असिंचित फसलों को भी होगा। असिंचित फसलें बारिश के दिनों में होने वाले शुष्क काल (Dry Spell) का सामना कर सकने में सक्षम होंगी।
- मिट्टी में नमी बढ़ने से जमीन पर हरियाली बढ़ेगी, जिससे पशु आधारित अर्थव्यवस्था को लाभ होगा।
- इस कार्य हेतु खर्च की जाने वाली धनराशि से स्थानीय लोगों को रोजगार मिलेगा तथा स्थानीय अर्थव्यवस्था में सकारात्मक बदलाव आयेगा।
- हरियाली बढ़ने से क्षेत्र के तापमान का नियमन होगा।

कुछ विशेष सुझाव

वर्षा जल संग्रहण के परिणाम दिखाई देने में समय लगता है। शुरूआती वर्षों में संग्रहण की दर कम होती है। जलग्रहण क्षेत्र में सुधार के साथ-साथ यह दर बढ़ती जाती है। आखिर वर्षों से रीते जलभण्डारों को उपयोगलायक स्तर तक पहुँचने में समय तो लगेगा ही।

अंजड़ के संदर्भ में जलसंग्रहण कार्यों के साथ-साथ कुछ ऐसे उपाय करने जरूरी होंगे, जिनसे नर्मदा के पानी पर निर्भरता कम हो। वास्तव में इस योजना

का क्रियान्वयन कई चरणों में तथा समयबद्ध तरीके से किया जाना चाहिये। निम्न गतिविधियों को भी इस योजना से जोड़कर ही देखा जाना चाहिये -

रणजीत सागर से समयबध्द पानी छोडें

रणजीत ताल एक बड़ा जलस्रोत है जिसका उपयोग मुख्यतः कृषि कार्यों के लिए होता है। योजना प्रारंभ करने के प्रथम वर्ष से ही इस जलाशय से निश्चित दिनों के अंतराल पर भोंगली नदी में पानी छोड़ने (Regulated Release) की व्यवस्था की जानी चाहिये। छोड़े गये पानी को नदी में अनेक स्थानों पर रोकना होगा ताकि पानी का अधिकतम उपयोग किया जा सके। कस्बे की कोई एक किमी लंबी पट्टी के रहवासी भोंगली के किनारे रहते हैं। नदी में पानी होने से नदी किनारे के अधिकांश लोग निस्तारी कार्यों के लिए सीधे नदी के पानी का इस्तेमाल करने लगेंगे। इससे नर्मदा योजना पर भार कम होगा,

पूर्वजों से सीखें जल निकास

कोई 4,000 वर्ष पहले नर्मदा घाटी के गाँवों में विद्यमान जलनिकास प्रणाली को आज के प्रतिमानों से भी आदर्श कहा जा सकता है।

उस युग में गटर में बहने वाले पानी की मात्रा आज की अपेक्षा अत्यधिक कम रही होगी। इस पानी में आज की तरह साबुन-सोडे के रूप में विषैले रसायन नहीं होंगे। पर्यावरण और जलप्रदूषण की संकल्पना भी नहीं होगी। इसके बावजूद हमारे पूर्वजों ने प्राकृतिक जलस्रोतों को गंदगी से बचाये रखा।

अंजड़ से 5 किमी दूर बसे गाँव छोटा बड़दा में हुई पुरातत्वीय खुदाई में एक व्यवस्थित भूमिगत जलनिकास तंत्र के अवशेष मिले हैं। घरों से निकली नालियाँ मुख्य चौड़ी नालियों में मिलती थीं जो बस्ती के बाहर बने कुएँ के आकार के ढँके हुए गड्ढों में खुलती थीं। गड्ढों की दीवारों को धँसने से बचाने के लिए पकी हुई मिट्टी के बड़े-बड़े छल्लों (Terracota Rings) से बाँधा गया था। इन गड्ढों के तल को पक्का नहीं किया गया था ताकि नालियों का पानी जमीन में समा सके।

नर्मदा किनारे बसे छोटा बड़दा के निवासी चाहते तो उपेक्षणीय मात्रा में निकलने वाले इस पानी को सीधे नर्मदा में छोड़ सकते थे। रसायनमुक्त पानी की इतनी कम मात्रा से विशाल नर्मदा के पानी की गुणवत्ता पर कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। पहले इसी प्रकार की जलनिकास व्यवस्था खापरखेड़ा (धार) में भी मिल चुकी है। इससे सिद्ध होता है कि नर्मदा घाटी में प्राकृतिक संसाधनों की स्वच्छता के प्रति लोग पहले से ही सचेत थे। अब आवश्कता इस बात की है कि हम भी अपने अतीत से सीख लेकर जीवनदायी प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करें।

क्योंकि पानी का सर्वाधिक उपयोग निस्तारी कार्यों में होता है। नर्मदा योजना पर भार कम होने का अर्थ है - इस पर लगने वाले मानव संसाधन और बिजली बिल के रूप में पड़ने वाले आर्थिक भार में कमी। इसी आर्थिक बचत का उपयोग कर वर्षा जल संग्रहण की योजना को आगे बढ़ाया जा सकता है।

भोंगली में पानी छोड़ने से प्रारंभिक वर्षों में रणजीत ताल से होने वाली सिंचाई के रकबे में आंशिक कमी आ सकती है। सिंचाई क्षमता को अप्रभावित रखने के लिए रणजीत सागर की क्षमता बढ़ाई जानी चाहिए। वर्षाजल संग्रहण भूगर्भीय जलस्तर बढ़ाकर परम्परागत जलस्रोतों को पानीदार बनाएंगे। इससे रणजीत सागर से छोड़े जाने वाले पानी की मात्रा कम होते हुए अंत में शून्य हो जायेगी।

रणजीत सागर का जीर्णोद्धार करें

83 वर्ष पुराने रणजीत ताल (सागर) के अभी भी जीवित तथा उपयोगी बने रहना किसी आश्चर्य से कम नहीं है। यह तालाब आज भी अपनी क्षमता के आधे से अधिक क्षेत्र में सिंचाई कर रहा है। क्षमता में कमी का कारण इसमें गाद (सिल्ट) भर जाना है। हालांकि तालाब की भौतिक स्थिति बेहतर है। इसकी क्षमता वृद्धि कर इससे पानी लिया जा सकता है और कस्बे की जल व्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।

इस तालाब में 13 फीट (3.96 मीटर) गाद भरी हुई है। इस हिसाब से 225 एकड़ (91.8 हेक्टर) के तालाब में 363.997 हेक्टर मीटर या 36,39,970 घनमीटर गाद भरी हुई है। इस गाद को साफ करने का अर्थ इतना ही जल भण्डारण बढ़ाना है। इतना जल भण्डारण अंजड़ की वार्षिक जरूरत के 7 गुने से भी अधिक है। इस गाद को 3 घनमीटर की ट्रेक्टर ट्राली के हिसाब से देखें तो यह संख्या 12,13,323 तक पहुँच जायेगी। यदि गाद निकालने का भाव प्रति ट्राली 100 रूपये हो तो इतनी सिल्ट निकालने का खर्च 12,13,32,300 रूपये होगा।

तालाब से निकली गाद की उर्वरता काफी अधिक होती है। यदि इसे खेतों में डाला जाये तो करीब 364 हेक्टर (करीब 892 एकड़) जमीन में गाद की एक मीटर मोटी परत डाली जा सकती है। यदि किसानों से 50 प्रतिशत अंशदान लिया

जा सके तो योजना की कीमत आधी अर्थात् 6,06,66,166 रू० रह जायेगी।

यदि तालाब की आधी गाद भी निकाल दी जाये तो रणजीत सागर से कस्बे को पूरे समय निर्बाध रूप से, वह भी बगैर किसी ऊर्जा को खर्च किये ढाल के कारण (गुरूत्वीय बल से) पानी मिल सकता है। ऊर्जा संकट के युग में बगैर बिजली के पानी मिलना सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। इस पानी को जलस्रोतों में भी डाला जा सकता है।

जलनिकास व्यवस्था सुधारें

भोंगली नदी में नियमित पानी छोड़ना प्रारंभ करने के पूर्व नदी किनारे की जलनिकास व्यवस्था सुधारना जरूरी है। आज कस्बे की अधिकांश जलनिकास नालियों (गटर) का पानी नदी में विभिन्न स्थानों पर छोड़ा जाता है। इससे यह नदी स्वयं एक गंदा नाला बन कर रह गई है।

पहले नदी में प्राकृतिक जल बहाव अधिक था, जिससे अशुद्धि की सांद्रता कम या उपेक्षणीय रहती थी और पानी उपयोग लायक रहता था। अब बारिश के कुछ दिन छोड़कर नदी प्रवाह शून्य रह गया है। ऊपर से नदी में मिलने वाली गटर के पानी की मात्रा कई गुना बढ़ गई है। पिछले 30 वर्षों में कस्बे की जनसंख्या भी लगभग दुगनी हो गई है। इस कारण अब भोंगली में जो भी पानी दिखाई देता है सिर्फ गटरों का ही पानी होता है।

ऐसी स्थिति में यदि भोंगली में रणजीत सागर से पानी छोड़ा जाये तो नदी के अधिकांश हिस्से में वह उपयोगलायक नहीं रह जायेगा। अतः तटबंधों के साथ नदी के दोनों किनारों के समानान्तर नालियाँ बनाई जानी चाहिये। इन मुख्य नालियों में कस्बे की समस्त नालियों को जोड़ा जाना चाहिये ताकि इन नालियों के माध्यम से कस्बे का सारा गंदा पानी कस्बे के बाहर किया जा सके ताकि रणजीत तालाब से छोड़े जाने वाले पानी का विभिन्न स्थानों पर उपयोग किया जा सके।

गटरों में पानी का बहाव कम करने के लिए जरूरी है कि पानी को घर के अंदर ही सोख्ता गड्ढों के माध्यम से रोकने का प्रयास किया जाये। जिन घरों में पर्याप्त जगह नहीं हो वहाँ मोहल्ले के किसी स्थान पर सार्वजनिक सोख्ता गड्ढे बनाये जा सकते हैं। गंदे पानी के निपटान हेतु कस्बे के बाहर उस स्थान पर भी बड़े सोख्ता गड्ढे बनाये जाने चाहिये जहाँ जलनिकास नालियाँ खत्म होती है।

दोहरी पाईप लाईनें डालें

देश के कस्बों से लेकर महानगरों तक में केवल शुद्ध पानी (Filtered water) प्रदाय करने की व्यवस्था है। लेकिन वास्तव में हमें सिर्फ पीने तथा खाना बनाने के लिए ही शुद्ध पानी की आवश्यकता होती है और इन कामों के लिए मुश्किल से 10 लीटर पानी/व्यक्ति/प्रतिदिन खपत होती है। नगरपंचायत द्वारा 55 लीटर /व्यक्ति/दिन प्रदाय करने पर उपभोक्ता 45 लीटर पानी तो नहाने, कपड़े धोने, पोंछा लगाने, टायलेट में फ्लश करने, बगीचा सींचने, वाहन धोने आदि ऐसे कामों में लेते हैं जिनके लिए साधारण पानी की ही आवश्यकता होती है। यहाँ तक कि निर्माण कार्यों में भी शुद्ध पानी का ही उपयोग किया जाता है क्योंकि नगरनिकाय द्वारा यही पानी प्रदाय किया जाता है। खाने-पीने के अलावा अन्य कामों में शुद्ध पानी का उपयोग अनावश्यक एवं अपव्यय है।

पानी फिल्टर करने का खर्च काफी अधिक होता है। अंजड़ के सदर्भ में देखें तो नर्मदा से अशुद्धिकृत पानी लाकर वितरण करने में वर्ष 2002-03 में करीब 6 रूपया प्रति घनमीटर खर्च हुआ था। यदि फिल्टर प्लांट चालू हुआ तो पानी के शुद्धिकरण पर एक चौथाई अतिरिक्त खर्च बढ़ेगा। इस प्रकार प्रतिवर्ष 7 लाख रूपये से अधिक का खर्च बढ़ जायेगा। जिला मुख्यालय बड़वानी में भी शुद्धिकरण पर एक चौथाई खर्च हो रहा है।

इस अनावश्यक खर्च से बचने के लिए शुद्ध तथा सामान्य पानी के वितरण के लिए अलग-अलग पाईप लाईनें डाली जा सकती हैं। इसमें एक बार अवश्य अधिक खर्च होगा लेकिन शुद्धिकरण संयत्र पर होने वाले खर्च (स्थापना खर्च एवं चालू खर्च) में भारी बचत से पाईप लाईन में लगने वाली लागत की क्षतिपूर्ति कुछ ही वर्षों में हो सकती है। चूँकि अंजड कस्बे में आंतरिक पाईप लाईनें निकट भविष्य में डाली जानी प्रस्तावित हैं ही इसलिए दोनों पाईप लाईनों को एक साथ डालने पर स्थापना खर्च में भी काफी कमी आयेगी।

तटबंधों का मूल्यांकन करें

नगरपंचायत द्वारा पिछले 8-9 वर्षों से भोंगली नदी के तटबंधों का निर्माण किया जा रहा हैं। इससे नदी तल सँकरा होने के साथ ही जल संग्रहण का क्षेत्र कम होता जा रहा है। अब तक बस्ती से गुजरने वाले अधिकांश नदी तल को

कांक्रीट से ढँक दिया गया है। भोंगली के नदी तल की पारगम्यता अधिक होने से यह हिस्सा जल संग्रहण की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। इसमें जल संग्रहण तेजी से होता है। अक्टूबर 2001 में स्थानीय ''वी नेचर क्लब'' द्वारा इस नदी पर बोरी बंधान बनाये गये थे, जिससे आसपास के कुओं का जलस्तर काफी तेजी से बढ़ा था। श्री भगवान मुकाती के कुएँ में तो जलस्तर इतना बढ़ गया था कि कुएँ में रखी विद्युत मोटर तक डूब गई थी। संक्षेप में तटबंधों ने जलसंग्रहण हेतु सबसे अच्छी सतह को खत्म कर दिया है। तटबंधों का परिणाम हम देख चुके हैं। अब आवश्यकता है इन अनुभवों से सबक लेकर योजना बनाने की ताकि भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों से बचा जा सके।

अंजड़ के पानी की कहानी यहाँ खत्म नहीं होती। इसमें वे सब अनुभव भी एक-एक करके जोड़े जा सकते हैं जो इफरात में मिले प्रकृति के प्रसाद पानी को तेजी से गायब होते जाने के नतीजे में समाज ने भुगते हैं। लेकिन इसमें यह भी जोड़ा जा सकता है कि भारतीय कपास संघ के मुख्य क्रय अधिकारी डॉ॰ सुरेश पटेल के विदाई समारोह में उनका भाषण सुनकर लोगों ने पानी के काम के लिए अपनी-अपनी जेबें खोल दी थीं, या कस्बे के युवकों के जरा आधुनिक से नाम वाले ''वी नेचर क्लब'' ने मिलजुलकर भोंगली में बोरी बंधान बनाकर भू-जलस्तर उठा दिया था, या फिर कस्बे के कुछ युवक ऊँची नगरीमाता की पहाड़ी को हरा-भरा करके वर्षा के पानी की तेज रफ्तार को रोकने का जुगाड़ लगा रहे हैं।

अंजड़ यूँ तो बेपानी दिखता है लेकिन फिर भी वहाँ पानीदार बनने की टिमटिमाती ऐसी झलक दिख जाती हैं। झलक का यह टिमटिमाना कभी सर्वहितकारी चमकदार प्रकाश बन सकेगा, यह रिपोर्ट इसी आशा से लिखी, छापी और आप तक पहुँचाई जा रही है। आप इसे पढ़कर समाज के काम में हाथ बँटाने का पुण्य लेना चाहेंगे या फिर सजाकर अलमारी के किसी खाने में रख देंगे, अब यह आप पर है। ■

संदर्भ

- अंजड़ की स्थापना तानासिंह द्वारा वर्ष संवत् 1542 में करने की जानकारी गढ़ी मोहल्ला निवासी श्री सत्येंद्रसिंह मण्डलोई से मिली। हालांकि इस संबंध में कोई दस्तावेजी प्रमाण नहीं है और उन्होंने इसे अपने समुदाय के राव से जानकारी लेकर अपनी डायरी में लिखा है। लेकिन पश्चिमी निमाड़ के गजेटियर के पृष्ठ क्रमांक 57 पर लिखा है कि 8 मई 1724 (संवत 1780 के लगभग) को उदाजी पँवार, मल्हार राव होल्कर और राणोजी सिंधिया के साथ बाजीराव पेशवा प्रथम बड़वाह के राजा सबलसिंह से मिले थे। इसका अर्थ है कि अंजड़ को बसाने वाले तानासिंह (सबलसिंह के बड़े पुत्र) का काल इसके बाद का होना चाहिये। लेकिन अकबर के शासनकाल में मालवा सूबे के अंतर्गत अंजारी परगने का जिक्र आया है इसका अर्थ है कि यह कस्बा सोलहवीं शताब्दि के मध्य में अस्तित्व में था।
- मुगलों ने अपनी सल्तनत को प्रशासनिक दृष्टि से सूबा (राज्य), सरकार (संभाग) और महाल (परगना) में विभाजित किया था। अकबर के शासन काल में मालवा सूबे की बीजागढ़ सरकार का अंजारी महाल ही अंजड़ होने का अनुमान है। बीजागढ़ सरकार के अन्य महाल थे – सिद्धनवा (सेंधवा) सनावर (सनावद), बिरोर (बरूड), मोराना (मर्दाना), नवारी (निवाली) कसरोद (कसरावद)। इस समय बड़वानी नामक रियासत या स्थान अस्तित्व में नहीं था।
- निमाड़ का इतिहास, इसकी प्राकृतिक (विशेषकर जंगल) समृद्धि की जानकारी हमें पश्चिमी निमाड़ के गजेटियर तथा 'निमाड़ी और उसका साहित्य' पुस्तक (हिन्दुस्तान एकेडमी उत्तरप्रदेश प्रकाशन, इलाहाबाद, 1960) से मिली।
- चंपा बावड़ी का शिलालेख 1976 में सेवानिवृत हुए। श्री शालिग्राम मिस्त्री ने पढ़कर बताया। उन्होंने ही चम्पा बावड़ी के नामकरण का आधार समझाया। उनके अनुसार बिलाड़ा (राजस्थान) से आने वाले सिर्वी समुदाय के दीवान बापजी की चंपा नामक घोड़ी बीमार होकर मर गई थी। घोड़ी की समाधि बावड़ी के पास ही बनाने के कारण इसका नाम चंपा बावड़ी पड़ा।

- ''जलाशय के पानी की शुद्धता'' शीर्षक के तहत दी गई जानकारी भारत के बाँधों की स्थिति पर देश के पूर्व जल संसाधन सचिव श्री रामास्वामी अय्यर एवं अन्य द्वारा लिखे गये शोध पत्र ''बड़े बाँध : भारत का अनुभव'' से ली गई है। यह अध्ययन 'विश्व बाँध आयोग' के लिए किया गया है।
- कम हो रहे वर्षा दिवसों (Rainy Days) का अध्ययन बागली (देवास) स्थित संस्था 'समाज प्रगति सहयोग' द्वारा पिछले 100 वर्षों के आँकड़ों के आधार पर किया गया है। देवास और बड़वानी के बीच अधिक दूरी नहीं है, अत: यह अध्ययन यहाँ भी प्रासंगिक है।
- नर्मदा के वार्षिक जल बहाव के आँकड़े केंद्रीय जल आयोग के गरूड़ेश्वर (गुजरात) स्थित केंद्र के हैं।
- कस्बे के कुओं को ढूँढने में हमारी मदद श्री बंशीलाल उटवाल, खेमा भाई पाटीदार तथा दिलीप आवल्या ने विशेष रूप से की।
- नर्मदा घाटी की विभिन्न पुरातत्वीय जानकारियाँ भारतीय पुरातत्व विभाग के कागजातों से मिलीं।
- राजसमढियाला की स्थिति विभिन्न समाचार पत्रों एवं निजी पत्र व्यवहार से ज्ञात हुई।
- इजराईल से संबंधित जानकारी सरकारी वेब साईट www.1upinfo.com/country-guide-study/israel/ से प्राप्त हुई हैं।
- वर्षा के आँकड़े जिला भू–अभिलेख कार्यालय, बड़वानी एवं खरगौन से प्राप्त हुए हैं। चूँकि १९९८ के पूर्व तक बड़वानी जिला खरगौन (पश्चिमी निमाड़) जिले में शामिल था, अत: वर्षा के आँकड़े खरगौन जिले के ही लिये गये हैं।
- 'छप्पनिया अकाल' यानि संवत् 1956 या ईस्वी सन् 1899 में पड़ा भयानक अकाल जिसमें इंदौर राज्य की 10 प्रतिशत जनसंख्या कम हो गई थी। यह जानकारी स्वराज भवन भोपाल द्वारा प्रकाशित 'जंगे आजादी में इंदौर–ग्वालियर' पुस्तक से मिली।
- पश्चिमी मध्यप्रदेश में अनेक संस्थाओं द्वारा जल संरक्षण का कार्य किया जा रहा है। इनमें संपर्क (रायपुरिया, झाबुआ), प्रसून (धार और खण्डवा), एकता परिषद (धार), विकास अनुसंधान एवं शैक्षणिक प्रगति संस्थान (धार एवं इंदौर), लोक बिरादरी (धार), इरकॉन (धार), ग्रामीण विकास ट्रस्ट (धार), आसा (झाबुआ), एनसीएचएसई (धार एवं झाबुआ) आदि प्रमुख हैं। ■

मीठा कुआं

अंजड़ के हर घर में पहुँचने वाले इस कुएं तक अब कोई नहीं पहुँचता।

नाका कुआं

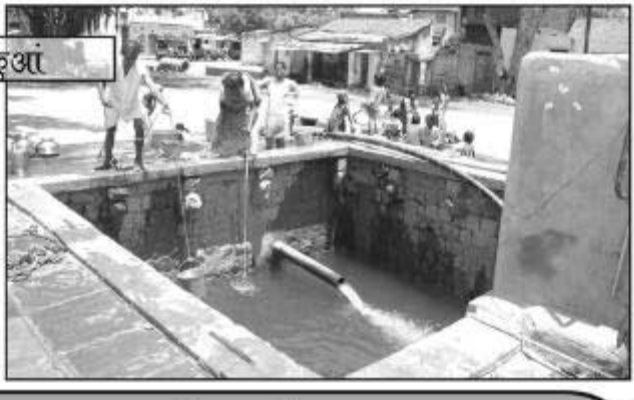

कभी फूटला तालाब से रीचार्ज होने वाले इस कुएं में दिखाई दे रहा पानी नर्मदा योजना का है।

मंथन अध्ययन केन्द्र के प्रकाशन

Water : Private Limited

(पानी के निजीकरण की प्रक्रियाओं और इसके समाज पर पड़ रहे प्रभावों की पड़ताल करती पुस्तक। इसका हिन्दी संस्करण शीघ्र प्रकाश्य।)

सहयोग राशि : 20 रूपये

*

भारत में बड़े बाँधों का

लेखा–जोखा

(बड़े बाँधों के विकास पर पड़े प्रभावों के अध्ययन की संक्षिप्त रपट)

सहयोग राशि : 5 रूपये

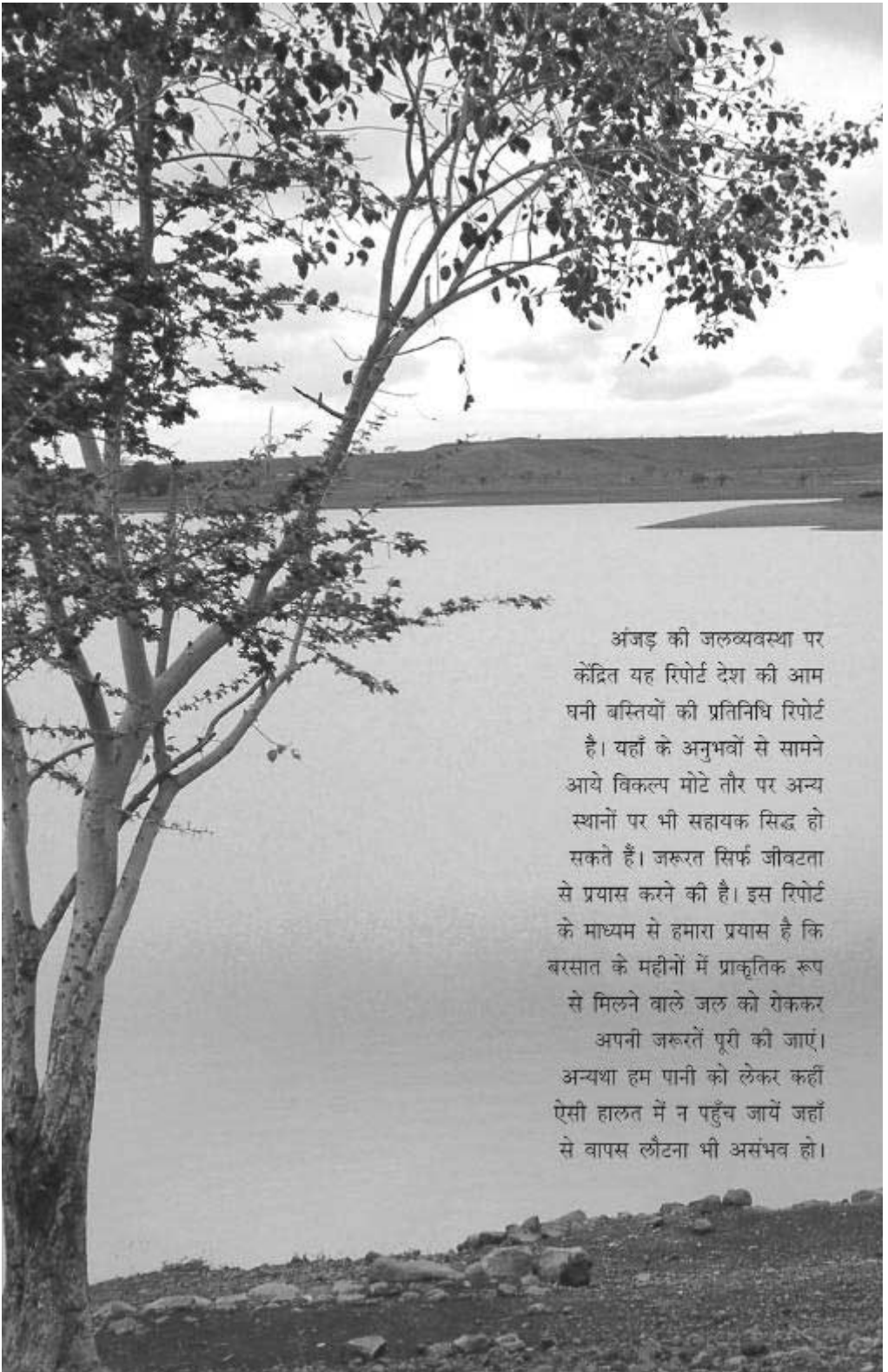

अंजड़ की जलव्यवस्था पर केंद्रित यह रिपोर्ट देश की आम घनी बस्तियों की प्रतिनिधि रिपोर्ट है। यहाँ के अनुभवों से सामने आये विकल्प मोटे तौर पर अन्य स्थानों पर भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जरूरत सिर्फ जीवटता से प्रयास करने की है। इस रिपोर्ट के माध्यम से हमारा प्रयास है कि बरसात के महीनों में प्राकृतिक रूप से मिलने वाले जल को रोककर अपनी जरूरतें पूरी की जाएं। अन्यथा हम पानी को लेकर कहीं ऐसी हालत में न पहुँच जायें जहाँ से वापस लौटना भी असंभव हो।